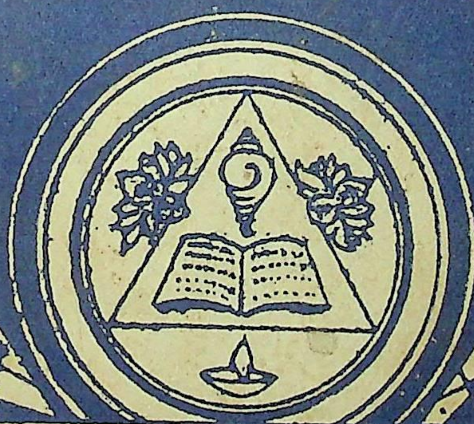
सेवासदन

एक अध्ययन

Sevasadan Ek Adhyayan

Rs. 1/50

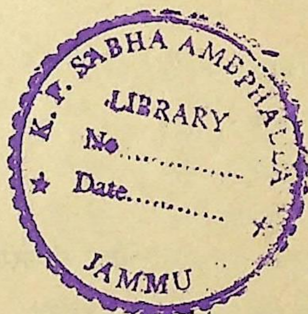


हिंदी साहित्य भंडा



सेवासदन : एक अध्ययन

[श्री प्रेमचंद जी के मौलिक उपन्यास का
आलोचनात्मक अध्ययन]



लेखक
रामखेलावन चौधरी, एम. ए. एम. एड०
प्रतापनारायण टंडन, एम. ए. साहित्यरत्न

Donated by
RK Razdan
w/o RL Razdan

मूल्य : डेढ़ रुपया

प्रकाशक
हिंदी साहित्य भंडार
अमीनाबाद, लखनऊ

चौथा संस्करण
१९६४
मूल्य १)५०

मुद्रक
जे० के० प्रिन्टर्स एण्ड टाइप कास्टर्स
१३८, नादान महल रोड,
लखनऊ

प्रकाशकीय निवेदन

हिंदी में साहित्य के विद्यार्थियों की आलोचनात्मक प्रवृत्ति जाग्रत करने के उद्देश्य से लगभग बीस वर्ष पहले हमने एक 'अध्ययन-माला' का प्रकाशन आरंभ किया था जिसमें अब तक लगभग छह दर्जन पुष्प हम गूँथ चुके हैं। हमें इस बात का हर्ष है कि पिछले पाँच-सात वर्षों में उत्तीर्ण होने वाले विभिन्न विश्व-विद्यालयों के अधिकांश स्नातकों ने तो उनसे लाभ उठाया ही, उनके निर्देशकों ने भी इन्हें देखकर संतोष प्रकट किया और हमारा उत्साह बढ़ाया।

प्रस्तुत पुस्तक भी उसी 'अध्ययन-माला' का नया पुष्प है जिसमें प्रेमचन्द जी के सर्वप्रथम मौलिक उपन्यास का आलोचनात्मक परिचय है। आशा है, अन्य अध्ययनों की तरह उपन्यास-प्रेमी इसे भी अपनायँगे।

विषय-सूची

सेवासदन : एक अध्ययन

परिच्छेदों का साहित्यिक अध्ययन

एक—पच्चीस साल से दारोगा कृष्णचंद्र ईमानदारी से थानेदारी कर रहे हैं। कर्तव्यपरायणता के कारण उनके अफसर और उनके नीचे के कर्मचारी सभी उनसे असंतुष्ट हैं। उनके परिवारमें पत्नी गंगाजली, उनकी दो पुत्रियाँ--सुमन और शांता और स्वयं कृष्णचन्द्र—चार ही प्राणी हैं। कृष्णचन्द्र जी खोलकर खर्च करने वाले हैं। इसी कारण वह कुछ धन भी नहीं जोड़ पाते हैं। उनकी बड़ी लड़की सुमन विवाह योग्य होती है। अब उन्हें वर की चिन्ता होती है। जब वह वर ढूँढने निकलते हैं, तो वरों के पिताओं की बातें सुनकर उनके होश उड़ जाते हैं। वे लोग जितनी रकम माँगते थे, उतनी देना इनके लिए सर्वथा असंभव था। अब कृष्णचन्द्र अपनी ईमानदारी पर पश्चात्ताप करते हैं और निश्चय कर लेते हैं कि अब मैं भी अनीति के मार्ग का अनुसरण करूँगा।

दो—रामदास महंत श्री बाँकेबिहारी जी के नाम से अपना काम-धंधा चलाते हैं। वह एक बार तीर्थ यात्रा से लौटकर यज्ञ करते हैं। दो मास तक हवन और भोज आदि चलता रहता है। महंत जी इसके लिए चन्दा लेते हैं। चेतू अहीर उन्हें चंदा देना अस्वीकार कर देता है। महंत जी उसको खूब पीटते हैं—

फलस्वरूप उसी रात को उसकी मृत्यु हो जाती है। महंत जी कृष्णचन्द्र दारोगा के हलके के ही हैं। दारोगाजी पूछ-ताँछ करते हैं। दारोगा जी के पास महंत जी का मुख्तार आता है। वह कुछ ले-देकर मामला खतम कर देने की प्रार्थना करता है। दारोगा जी ऐसे ही अवसर की तलाश में थे। वह तीन हजार पर बात मंजूर कर लेते हैं। वह तीन हजार रुपए तुरंत बिना गिने हुए सुमन के विवाह के लिए संदूक में रख लेते हैं। मुख्तार उनसे अपना हक माँगता है। रिश्वत लेने में, और उसके हथकंडे से अनभिज्ञ दारोगा कृष्णचन्द उसको कुछ भी नहीं देते। वह उनसे रुष्ट हो जाता है।

तीन—मुख्तार यह रहस्य थाने के अन्य अधिकारियों पर प्रकट देता है। अधिकारीगण गुप्त रूप से जाँच करते हैं। अन्त में रहस्य खुल जाता है। सुमन के विवाह की तैयारियों में व्यस्त दारोगा कृष्णचन्द्र गिरफ्तार कर लिए जाते हैं। वह अपना अपराध स्वीकार करते हैं। वह अपनी पत्नी को समझा देते हैं कि वे तीन हजार रुपए सुमन के विवाह में खर्च करना, मेरे लिए वकील आदि रखकर व्यर्थ रुपया बरबाद न करना। मैंने अपनी आत्मा का हनन करके ये रुपए प्राप्त किए हैं। अगर इनसे सुमन का बेड़ा पार लग गया, तो मुझे संतोष होगा!

चार—दारोगा कृष्णचन्द्र पर मुकदमा चलता है। उनकी पत्नी गंगाजली पानी की तरह रुपए बहाकर उन्हें बचाने का प्रयत्न करती हैं, किन्तु सफल नहीं होती। कृष्णचन्द्र को पाँच और महंत जी को सात वर्ष की सजा होती है। महंत जी के चेलों को काले पानी का निर्णय होता है। अपील होने पर कृष्णचन्द्र की सजा एक वर्ष कम कर दी जाती है। गंगाजली के भाई उमानाथ उसे और दोनों लड़कियों को अपने घर ले आते हैं। गंगाजली उन्हें

बता देती है, कि अब मेरे पास केवल चार पाँच सौ रुपए हैं! सुमन का विवाह जहाँ पहले निश्चित हुआ था, वहाँ से अस्वीकृति आ जाती है। बड़ी दौड़ धूप के बाद अन्त में उमानाथ एक वर खोजने में सफल हो जाते हैं। बनारस में एक कारखाने के बाबू से सुमन का विवाह करने का निश्चय करके वह संतोष की साँस लेते हैं।

पाँच—सुमन का विवाह हो जाता है। उसका पति गजाधर पंद्रह रुपए मासिक पर नौकर है। वह एक छोटे से मकान में रहता है। कुछ दिन खटकने के बाद सुमन वहाँ के वातावरण की आदी हो जाती है। गजाधर के वेतन के पंद्रह रुपये वह बीस दिन में ही खर्च कर देती है। अब गजाधर और सुमन में विवाद उठ खड़ा होता है। किसी तरह सुमन का एक आभूषण गिरवी रखकर वह काम चलाता है। सुमन कुछ ही समय में पास पड़ोस की स्त्रियों में प्रसिद्ध हो जाती है। गजाधर पन्द्रह रुपये महीने का एक और काम अतिरिक्त समय में करने लगता है। किन्तु सुमन तीस रुपए में भी घर का काम-काज चलाने में असफल सिद्ध होती है। अब उनका परिवारिक जीवन कलहमय हो जाता है।

छह—गजाधर के मकान के सामने ही भोली बाई नामक एक वेश्या रहती है। एक दिन भोली के यहाँ उत्सव था। भोली सुमन को निमंत्रण देती है। सुमन उससे घृणा करती थी, अतः वह उसके यहाँ जाना अस्वीकार कर देती है। रात के नौ बजे के लगभग उत्सव प्रारंभ हुआ। सुमन देखती है, कि भोली के यहाँ बहुत से प्रतिष्ठित और सभ्य पुरुष बैठे हैं। गजाधर भी वहाँ जाता है। सुमन के मन में यह बात आती है, कि भोली का वेश्या होने पर भी समाज में आदर है और बड़े-बड़े प्रतिष्ठित

नागरिक उसका निमंत्रण पाना सौभाग्य की बात समझते हैं। उसके मन में भोली के प्रति जो घृणा थी, वह बहुत-कुछ कम हो जाती है।

सात—धीरे-धीरे सुमन का भोली बाई के यहाँ का आना जाना प्रारंभ हो जाता है। साथ ही वह यह भी समझने लगती है, कि भोली बाई का शहर में बड़ा सम्मान है। भोली के बहुमूल्य आभूषण देखकर वह बहुत प्रभावित होती है। उसे अपनी दरिद्रता पर क्रोध आता है। वह गजाधर के प्रति बहुत रूखी हो जाती है। उसके इस मनोवैज्ञानिक परिवर्तन को समझने में गजाधर सर्वथा असफल रहता है। एक बार वह उसे भोली बाई के यहाँ से आते देखकर क्रुद्ध हो जाता है। वह उसे समझाता है कि तुम भ्रम में हो। उस दिन तुमने भोली बाई के घर में जिन प्रतिष्ठित मेहमानों को देखा था, उनमें चरित्रवान और सज्जन पुरुष कोई भी नहीं था। वास्तव में केवल धनी होने के कारण ही समाज में उनका सम्मान होता है। तुम उसके पास मत आया-जाया करो। यह सुनकर सुमन सोचती है कि वास्तव में सब धर्म-भ्रष्ट थे। वह उससे मिलना जुलना कम कर देती है। वह रामायण पाठ और गंगास्नान भी आरंभ देती है। रामनवमी के दिन वह भोली बाई को एक मंदिर में गाते देखती है। फिर वह इस निश्चय पर आती कि भोली का सभी जगह सम्मान है। विद्वान, धर्मात्मा, धनवान—सभी उसका आदर करते हैं।

आठ—गजाधर एक दिन रात को लौटकर देखता है, भोली उसके पलंग पर बैठी हुई सुमन से बातें कर रही है। भोली के चले जाने पर वह सुमन का उससे मेलजोल बढ़ाने के लिए फिर मना करता है। सुमन उससे कहती है, कि भोली से बात करने का गौरव पाकर बड़े-बड़े धनवान, धर्मात्मा और प्रतिष्ठित लोग अपने को धन्य समझते हैं। इस पर गजाधर फिर उसे समझाता

है कि जो लोग ऐसा करते हैं, वे वास्तव में धर्मात्मा और सज्जन नहीं हैं। सुमन उसकी बात मानकर उससे मिलना-जुलना बन्द कर देती है। दिन भर कोठरी में रहने के कारण वह अस्वस्थ रहने लगती है। गजाधर के कहने से वह गंगास्नान फिर शुरू कर देती है। एक दिन वह गंगस्नान से लौटते समय बाग में एक बेंच पर बैठ जाती है। चौकीदार उसे बेंच पर से उठने को कहता है। वह बेंच पर से हट जाती है। तभी वहाँ भोली आती है। चौकीदार उससे बहुत नम्रता से बात करता है। भोली के जाने के बाद सुमन उस चौकीदार को फटकारती है। एक सज्जन गाड़ी पर बैठे कहीं जा रहे थे। चौकीदार की अशिष्टता देखकर वह उसे बहुत डाँटते हैं। गाड़ी पर से उनकी स्त्री सुमन को बुला लेती है। वह सज्जन वकील पद्मसिंह, और उनकी स्त्री सुभद्रा सुमन को उसके घर छोड़ देते हैं। सुमन इन दोनों की प्रशंसा गजाधर से करती है। उसे वकील साहब की प्रशंसा अच्छी नहीं मालूम होती।

नव—सुमन की दृष्टि में सुभद्रा और वकील साहब आदर्श दंपति थे। धीरे-धीरे सुभद्रा से वह बहुत मेलजोल बढ़ा लेती है। कुछसमय बाद गजाधर की नौकरी छूट जाती है। सुमन के लिए अब घर का खर्च चलना असम्भव हो जाता है। उसे अपनी माँ की मृत्यु का भी समाचार मिलता है। उस साल वकील साहब म्युनिसिपैलिटी के मेंबर भी हो जाते हैं। वह भोली का मुजरा करवाते हैं। सुमन भी सुभद्रा के साथ उत्सव देखती है। भोली का सम्मान देखकर सुमन सोचती है, कि मैं भोली से अधिक रूपवान हूँ। अतः यदि मैं भी इसी तरह स्वतंत्र हो जाऊँ तो मैं इससे भी अधिक सम्मान पा सकती हूँ। आधी रात को उत्सव समाप्त होने पर वह घर लौटती है। गजाधर उस पर अत्यंत क्रोध करता है। वकील साहब के यहाँ रहने की बात पर उसका

क्रोध और भी बढ़ता है। वह उससे घर से निकल जाने को कहता है। सुमन यह धमकी नहीं सहन कर पाती और घर छोड़कर चल देती है। सवेरे वह सुभद्रा के पास जाती है। वहाँ उसे आश्रय मिलता है। गजाधर अब वकील साहब को बदनाम करने लगता है। वकील साहब सुमन को अपने घर से निकालने का निश्चय कर लेते हैं। अभिमानिनी सुमन उसके कुछ कहने के पूर्व ही वहाँ से चल देती हें। वकील साहब के प्रति उसके हृदय में जो श्रद्धा थी, उसका अंत हो जाता है।

दस—सुमन को अपने लिए भोली को छोड़कर और कोई आश्रय दिखाई नहीं देता। भोली सुमन को बुला लेती है और अपने साथ रहने को तैयार कर लेती है। भोली के पूछने पर सुमन उससे कह देती है, कि यदि गजाधर उसका पता पूछे, तो वह कह दे, कि सुमन मेरे यहाँ नहीं है। भोली उसे अपने चंगुल में आते देखकर बड़ी हर्षित होती है।

ग्यारह—प्रति वर्ष होली पर वकील साहब अपने बड़े भाई मदनसिंह के घर जाते थे। इस वर्ष जब वह न आए, तो उनके भाई मदनसिंह, भावज भामा, और भतीजा सदन—उदास हो जाते हैं। सदन उनके पास जाने का प्रस्ताव करता है। जब माता-पिता से उसे स्वकृति नहीं मिलती, तब वह चुपचाप बिना बताए चल पड़ता है। वकील साहब अपने भाई को तार द्वारा सदन के आने की सूचना दे देते हैं। वह गजाधर से सुमन के सम्बन्ध में पूछते हैं और उसे घर से निकाल देने पर पछताते हैं।

बारह—वकील साहब सदन का नाम किसी न किसी स्कूल में लिखाना चाहते हैं, पर जगह न होने के कारण असफल होते हैं। अन्त में वह उसके लिए घर पर ही अध्यापक रख देते हैं।

सदन का मन पढ़ने लिखने में नहीं लगता। वह दालमंडी और चौक में घूमना शुरू कर देता है। प्रारंभ में कुछ लजाने और संकोच करने के बाद वह निर्भीक दालमण्डी के चक्कर लगाने लगता है।

तेरह—सदन को दो-एक बार दालमंडी में घूमते देखकर भी वकील साहब सकोच के कारण उससे कुछ नहीं कहते। सदन का वहाँ का घूमना और भी बढ़ता है। एक दिन वकील साहब को मालूम होता है कि सुमन भी दालमण्डी के एक कोठे पर बैठने लगी है। वह बहुत दुखी होते हैं, और अपने मित्र बिट्ठलदास को सुमन का उद्धार करने के लिए पत्र लिखते हैं। बिठ्ठलदास सुमन के पास जाकर उसे समझाते हैं, और वहाँ हटकर विधवाश्रम में रहने की सलाह देते हैं। सुमन उनसे कहती है, कि यदि आप पचास रुपए प्रतिमास का मेरे निर्वाह के लिए प्रबन्ध कर दें, तो मैं यह स्थान छोड़ सकती हूँ। वह उनसे यह भी अनुरोध करती है, कि आप एक बार वकील साहब को भी अपने साथ यहाँ लेते आएँ।

चौदह—वकील साहब से बिट्ठलदास आकर सारी बात बता देते हैं। वकील साहब बीस रुपए प्रतिमास देने को तैयार हो जाते हैं। पर वे सुमन के पास जाना अस्वीकार कर देते हैं। वह कहते हैं कि सुमन के पास जाने से कोई लाभ न होगा, आप बाकी तीस रुपए प्रति मास का प्रबन्ध कर लीजिए। बिट्ठलदास बीस रुपए मासिक सहायता इतनी शीघ्रता से होता देखकर बहुत संतुष्ट होते हैं और शेष का प्रबन्ध करने का निश्चय करके विदा लेते हैं।

पंद्रह—सदन अपने चरित्र पर दृढ़ रहने में असफल होता है। एक दिन वह सुमन के कोठे पर पहुँचता है। सुमन उसका

चेहरा वकील साहब से मिलता देखकर आश्चर्य करती है। सदन उसे अपना वास्तविक परिचय नहीं देता। किन्तु सुमन कुछ ही समय में सब - कुछ पता लगा लेती है। वह सदन पर मुग्ध हो जाती है, किन्तु वकील साहब का घर भी नहीं उजाड़ना चाहती। सुमन को प्रसन्न करने के लिए सदन एक साड़ी खरीद कर उसे भेंट करता है। सुमन साड़ी तो ले लेती है, किन्तु भविष्य में कुछ लेना अस्वीकार कर देती है। सदन एक दिन अपनी चाची का कंगन हँसी में उठा लेता है। बाद में वह अपना निश्चय बदल कर वह कंगन भी सुमन को भेंट कर देता है। सुमन कंगन पहचान जाती है। वह उसे सचेत कर देती है, कि मैं आपसे वास्तव में प्रेम करती हूँ। इस प्रकार की वस्तुओं को मेरे लिए लाने की आवश्यकता नहीं है। वह उसे फिर चेतावनी देती है, कि अब अगर आप कोई वस्तु लाए तो कदापि स्वीकार न करूँगी।

सोलह—बिट्ठलदास शेष तीस रुपए प्रतिमास का प्रबन्ध होने की आशा से म्युनिसिपल बोर्ड के चेयरमैन सेठ बलभद्रदास, सेठ चिम्मनलाल, डाक्टर श्यामाचरण आदि बड़े-बड़े लोगों के पास जाते हैं किंतु प्रत्येक उनकी बात को टालकर उन्हें इस झगड़े में न पड़ने की सलाह देता है। बिट्ठलदास निराश होकर सुमन को बीस रुपए मासिक पर ही विधवाश्रम में आने पर तैयार करने की कोशिश करते हैं। सुमन जब यह सुनती है कि बीस रुपये मासिक वकील साहब दे रहे हैं, तो उसके हृदय में उनके लिए पूर्ववत् श्रद्धा हो जाती है।

सत्रह—सुमन पार्क में बैठे हुए वकील साहब के पास जाती है, किन्तु वह दूर ही से देखकर चलने लगते हैं। सुमन इसमें अपना अपमान समझती है। वह सदन के दिए हुए कगन को उनकी ओर फेंक देती है। वह पूछते हैं कि यह कहाँ से आया ? वह उत्तर देती है कि मैंने इन्हें एक सर्राफ के यहाँ देखा था। मैं

पहचान गई और ले लिए। वह अपने पतन के लिए उन्हें उत्तरदायी ठहराती है। वकील साहब भी यह अनुभव करने लगते हैं कि वास्तव में मेरी ही भूल के कारण इसका पतन हुआ।

अठारह—सुभद्रा अपना कंगन न पाकर बहुत घबड़ाती है। बहुत खोज-बीन करने के पश्चात् उसका संदेह सदन पर होता है। सदन के व्यवहार से उसका यह संदेश विश्वास में बदल जाता है। वकील साहब उसे कंगन देते हैं और बता देते हैं कि तुम सदन पर व्यर्थ संदेह करती हो, मैं इन्हें एक सर्राफ की दूकान से लाया हूँ।

उन्नीस - विट्ठलदास से वकील साहब कहते हैं कि मैं सुमन के उद्धार के लिए पचास रुपए मासिक देने को तैयार हूँ। यह सुनकर विट्ठलदास बहुत प्रसन्न होते हैं। वकील साहब को सुमन और सुनकर के प्रेम के सम्बन्ध में भी वह बताते हैं। वकील साहब यह सुनकर चिंतित हो जाते हैं। विट्ठलदास सुमन से जाकर कहते हैं कि वकील साहब तुम्हारे निर्वाह के लिए पचास रुपए मासिक देने को तैयार हैं, तुम विधवा-आश्रम में चली जाओ। सुमन की श्रद्धा वकील साहब के प्रति और भी बढ़ जाती है। वह ये रुपए अस्वीकार कर देती है, और उसी दिन शाम को विट्ठलदास के साथ विधवाश्रम चली जाती है।

बीस—एक सप्ताह तक सदन सुमन के पास नहीं जाता है। सुभद्रा के पास कंगन देखकर वह समझता है, कि सुमन ने पता लगाकर कंगन मेरे यहाँ भेज दिया है, और वह मुझको धोखेबाज समझती है। बहुत सोच-विचार के बाद अन्त में वह निश्चय कर लेता है, कि मैं सुमन के पास जाकर अपना प्रेम प्रकट करूँगा, और उससे सब हाल बता दूँगा। वह शाम को टहलने

निकलता है। एक साधु उसे मिलता है और सचेत करता है, कि तुम सुमन के पास जाना बंद कर दो। वह सुमन के पास जाए बिना ही लौट आता है। वकील साहब अपने भाई से सदन के विवाह निश्चित हो जाने की सूचना पाकर उसे और सुभद्रा को घर भेज देते हैं।

इक्कीस—उमानाथ अपनी व्यवहार-कुशलता के कारण सारे गाँव में प्रसिद्ध होने पर भी घर में अपनी पत्नी का बहुत दबाव मानते हैं। अपनी बहिन को लाने के कारण जाह्नवी उनसे रुष्ट रहती है। उसका क्रोध तब कम होता है, जब गंगाजली की मृत्यु हो जाती है। शांता बिलकुल असहाय रह जाती है। उमानाथ उसके विवाह के लिए चंदा करके कुछ रुपए इकट्ठा कर लेते हैं, और वर की खोज में लग जाते हैं।

बाइस—वकील साहब के सहयोग से विट्ठलदास वेश्याओं को शहर से बाहर रखने का आंदोलन प्रारंभ करते हैं। शहर के अन्य बड़े-बड़े लोग भी इस आंदोलन में सहयोग देते हैं। वकील साहब यह सोचकर चिंतित हो जाते हैं कि जब सदन के विवाह के लिए भइया वेश्याओं का बुलाने का प्रबन्ध करने के लिए कहेंगे तब मैं क्या उत्तर दूँगा। वह बहुत सोच-विचार के बाद यह निश्चय करते हैं कि मैं उन्हें समझा लूँगा और इस कार्य का विरोध करूँगा।

तेइस—जब वकील साहब के बड़े भाई मदनसिंह को यह मालूम होता है, कि सदन के विवाह पर नाच का प्रबन्ध नहीं हुआ है, तब वह बिगड़ उठते हैं। नाच न करवाने में उन्हें अपना अपमान मालूम होता है। वकील साहब उन्हें बहुत समझाते हैं और कहते हैं, कि जितना रुपया आप नाच में व्यय करते उतने में आप ग्रामीणों के लिए कोई पक्का कुआँ बनवाइए। बहुत वाद-विवाद के बाद मदनसिंह उनकी बात मान लेते हैं।

चौबीस—सन्यासी गजाधर उमानाथ को सुमन के पतन का सब हाल बताता है, वह यह भी बताता है कि मैं किस प्रकार सुमन को घर से निकालने के बाद एक मंदिर में पुजारी रहा, और फिर किस प्रकार वैरागी हुआ। वह उमानाथ को आश्वासन देता है, कि आप शांता के लिए योग्य वर ढूँढ़िए मैं आपको एक हजार रुपए भी सहायता के रूप में दूँगा। उमानाथ सुमन के पतन के सम्बन्ध में सुनकर चिंतित हो जाते हैं और इसके लिए अपने आपको उत्तरदायी समझते हैं।

पच्चीस—एक हजार रुपए के दहेज पर उमानाथ शांता का विवाह सदन के साथ ठीक कर लेते हैं। जेल से छूटकर कृष्णचंद्र भी आ जाते हैं। किन्तु जेल के जीवन से उनके चरित्र के सब गुणों का अंत हो जाता है। वह बुरी संगति में रहने लगते हैं। एक बार उमानाथ और कृष्णचंद्र में कुछ कहासुनी भी हो जाती है। कृष्णचंद्र बनारस जाकर कुछ रुपया कमाने का निश्चय करते हैं। उमानाथ उन्हें शांता के विवाह तक रुकने को कहते हैं।

छब्बीस—वकील साहब म्युनिसिपैलिटी में वेश्याओं को शहर से दूर रखने का प्रस्ताव रखते हैं। वह अपने प्रस्ताव को स्वीकृत कराने के लिए अन्य सदस्यों से मिल कर उन्हें इस प्रस्ताव की उपयोगिता संबंधी अनेक बातों से परिचित कराते हैं। कुछ लोग इस प्रस्ताव का विरोध भी करते हैं। इस प्रकार अब उनमें दो दल हो जाते हैं। एक तो वह दल जो प्रस्ताव के पक्ष में है, दूसरा वह जो विपक्ष में है। दोनों दलों के नेता अपनी विजय के लिए प्रयत्नशील हो जाते हैं।

सत्ताइस—उमानाथ जाह्नवी से सुमन के पतन की बात कह देते हैं। वह उसे आगाह भी कर देते हैं कि यह बात किसी से मत कहना। किन्तु इतनी भयंकर बात किसी से कहे बिना उसे संतोष नहीं होता। वह एक दिन यह बात दबी जबान से कुबेर

पंडित की पत्नी से कह देती है। वह कृष्णचंद्र से रुष्ट होने के कारण निश्चय कर लेती है कि मैं अब इनसे बदला लूँगी।

अट्ठाइस—मदनसिंह अपने पुत्र सदन की बारात लेकर आते हैं। सहसा उन्हें मालूम होता है, कि वधू के पिता जेल से छूटकर अभी आए हैं, और बनारस की एक वेश्या, जिसका नाम सुमन है, वह वधू की सगी बहन है। मदनसिंह इस समाचार की सत्यता की जाँच करते हैं जब उन्हें मालूम हो जाता है, कि यह समाचार बिल्कुल सत्य है तब वह बारात लौटने की आज्ञा देते हैं। वकील साहब अपने भाई को समझाने की चेष्टा करते हैं, किन्तु असफल होते हैं। कृष्णचंद्र अभी तक बारात लौटने के कारण से अनभिज्ञ थे। जब उन्हें यह मालूम होता है कि सुमन का किस प्रकार पतन हुआ, तब वह अचेत होकर गिर पड़ते हैं।

उनतीस—सुमन को विट्ठलदास चुपचाप विधवाश्रम में रख देते हैं। वह आश्रम की अन्य स्त्रियों को यह बताते हैं कि सुमन भी एक विधवा स्त्री है। अपने स्वभाव के कारण सुमन वहाँ बहुत प्रसिद्ध हो जाती है, और वहाँ की अन्य स्त्रियाँ उसका बहुत आदर करने लगती हैं, विट्ठलदास को वकील साहब से यह मालूम हो जाता है कि सुमन के कारण उसकी बहिन शांता का विवाह नहीं हुआ। वकील साहब अब अपने प्रस्ताव के संबंध में लोगों पर प्रभाव डालने लगते हैं और उन्हें समझाते हैं।

तीस—जब सदन की बारात लौट आती है तो निराश होकर उसका मन फिर सुमन की ओर झुकता है। सुमन के कोठे पर ताला लगा देखकर उसे आश्चर्य होता है। पार्क में रमेशदत्त का व्याख्यान सुनने पर वह समझने लगता है कि वास्तव में वेश्याओं का शहर में रहना अच्छा नहीं है, इन्हें शहर से बाहर रहना चाहिए। दूसरे दिन वह अबुलवफा का भाषण सुनता है। उनके

विचार बदल जाते हैं। वह समझता है कि वेश्याओं से अनेक लाभ हैं। उनको शहर में ही रहना चाहिए। बहुत सोच-विचार के बाद वह इसी निश्चय पर आता है, कि वास्तव में वेश्याओं को शहर में नहीं रहना चाहिए। एक दिन सहसा वह सुमन को बहुत सादे वेश में देखकर चौंक पड़ता है। उसमें यह परिवर्तन देखकर उसे बड़ा आश्चर्य होता है।

इकत्तीस—उमानाथ कृष्णचंद्र को सुमन की हत्या करने का फैसला करते देखकर समझाते हैं कि इस तरह से कुछ काम न बनेगा। मैं मदनसिंह पर दस हजार का दावा करूँगा। अगर पाँच हजार की भी डिगरी हो जायगी, तो शांता का विवाह किसी अच्छे घर हो जायगा। कृष्णचंद्र अपना विचार बदल देते हैं। वह शांता को संतोष का सहारा कभी न छोड़ने का उपदेश देकर कहते हैं कि तुम सब लोगों के दुख का कारण मैं ही हूँ। वह आधी रात को गंगा में डूबकर प्राण दे देते हैं। शांता उनकी मृत्यु से शोकाकुल हो जाती है। वह जाह्नवी से कह देती है, कि मैं चुनार जाऊँगी। वह निश्चय कर लेती है, कि मैं सदन के पिता के घर यदि बहू बनकर न रह सकी, तो दासी बनकर रहूँगी। वह वकील साहब को एक पत्र लिखकर उन्हें सब हाल बताकर कहती है कि यदि एक सप्ताह तक आपने कोई उत्तर नहीं दिया, तो मैं प्राण दे दूँगी। वकील साहब उसे लाने का निश्चय कर लेते हैं।

बत्तीस—अपने पिता की मृत्यु, और शांता की बरात लौटने की सूचना पाकर सुमन को अपनी भयानक भूल का बोध होता है, उसे अत्यन्त आन्तरिक पीड़ा होती है। वह गंगा में डूब कर प्राण दे देने का निश्चय करती है। गंगा के किनारे उसे सन्यासी के वेश में गजाधर मिलता है। सुमन लज्जा और भय से अपना मुँह छिपाती है। गजाधर उसके पैरों पर गिर कर क्षमा माँगता

है। सुमन का मन उसकी ओर से साफ हो जाता है। वह उससे बताती है, कि मैंने ऐसा भयंकर अपराध किया है, जिसका प्रायश्चित केवल मौत है। अतः मैं गंगा में डूबकर प्राण दूँगी। गजाधर उसे समझाता है कि तुम दूसरों के लिए जीवित रहो। सुमन अपना निश्चय त्याग कर सेवा व्रत धारण करती है।

तेंतीस—वकील साहब ने शांता के पत्र में उत्तर में लिख दिया कि गौना करने आ रहे हैं। लोगों को बिना विवाह के गौना करने पर आश्चर्य होता है। निश्चित समय पर वकील साहब और विट्ठलदास आकर शांता को सब समझा देते हैं और कहते हैं कि जब तक मैं भाई साहब को न राजी कर लूँ, तब तक तुम अपनी बहन के पास आश्रम में रहना। शांता उनकी बात मान-कर सुमन के पास रहना स्वीकार कर लेती है। आश्रम में सुमन को बेहोश देखकर वह घबड़ा जाती है, और उसकी देखभाल में लग जाती है।

चौंतीस—वकील साहब अपना प्रस्ताव म्युनिसिपल बोर्ड में पेश कर देते हैं। शफकतअली उसमें संशोधन करते हैं। कुछ लोग संशोधन का विरोध भी करते हैं। अन्त में प्रस्ताव स्वीकृत हो जाता है, और संशोधन भी। प्रस्ताव का कुछ भाग स्वीकृत होता है, और कुछ अस्वीकृत हो जाता है।

पंतीस—सुमन सदन से मिलकर शांता के संबंध में बातचीत करना चाहती है। एक दिन वह उसे घाट पर देखकर शांता को लेकर उसके पास जाती है। और उसे 'भैया' कहकर संबोधित करती है। वह सदन से पूछती है, कि मेरे अपराध का दंड शांता को क्यों मिल रहा है ? वह उससे स्पष्ट उत्तर माँगती है। सदन अपना अपराध स्वीकार करता है। सुमन उसे यह भी बताती है कि शांता उससे कितना अधिक प्रेम करती है। सदन के पैरों पर

गिर कर शांता रोने लगती है। सदन उसका उद्धार करने का निश्चय कर लेता है। वह इधर-उधर दौड़ने-धूपने के बाद अंत में एक नाव खरीद लेता है।

छत्तीस—वकील साहब के हृदय में सच्ची सेवा की भावनाएँ जागती हैं। वह वेश्याओं का सुधार करने में जुट जाते हैं। उनके मित्र उन्हें कोई सहयोग नहीं देते। साधु गजानन्द भी उनके साथ कार्य करता है।

सैंतीस—सदन का नाव का काम कुछ दिनों में चल निकलता है। वह मल्लाहों के आदर का पात्र बन जाता है। कुछ समय बाद वह गंगा के किनारे ही एक झोपड़ी तैयार कर उसमें रहने लगता है। एक दिन सुमन और शांता को वह घर में बुला लेता है।

अड़तीस—विट्ठलदास ने सुमन को आश्रम में जब रखा था तभी से लोग इसका विरोध करने लगे थे। धीरे-धीरे यह विरोध बढ़ता जाता है। अन्त में एक दिन सुमन और शांता आश्रम छोड़ कर चली जाती हैं। विट्ठलदास यह सूचना पाकर घबड़ा जाते हैं। वह वकील साहब को यह समाचार सुनाते हैं। वकील साहब भी चिंतित हो जाते हैं। तभी सदन आकर बता देता है कि वे दोनों मेरे यहाँ हैं। वह उन्हें अपना निश्चय बता देता है कि अब मैं उन्हें अलग नहीं रखूँगा। कल विवाह संस्कार होगा।

उन्नातालीस—सदन और शांता का विवाह उसी झोपड़े में हो जाता है। मदनसिह यह बात सुनकर बहुत क्रोध करते हैं। वह कहते हैं कि मैं अपनी सब जायदाद कृष्णार्पण कर दूँगा। भामा वकील साहब को समझाती है कि तुम उसकी देखभाल करते रहना।

चालीस—सुमन कुछ समय तक तो सदन के झोपड़े में शांति-

पूर्वक रहती है, किन्तु बाद में उसका वहाँ रहना कठिन हो जाता है। शांता को पहले से ही उस पर विश्वास न था। जब मल्लाहों की स्त्रियों को सुमन का पूर्व परिचय मिलता है, तो वे उसके पास आना-जाना बंद कर देती हैं। सुमन उस घर को छोड़ने का निश्चय कर लेती है, किन्तु शांता के प्रसव तक रुक जाती है।

इकतालीस—वकील साहब के परिश्रम और सच्ची लगन से वेश्या-सुधार का काम तेजी से होता है। वेश्याएँ शहर छोड़ने को तैयार हो जाती हैं।

बयालीस—मदनसिंह का सारा क्रोध सदन के यहाँ पुत्र जन्म का समाचार पाकर उड़ जाता है। भामा पौत्र जन्म के उपलक्ष में साधुओं को भोजन कराती और गीत गाती है।

तेंतालीस—मदनसिंह और भामा पौत्र की छठी पर सदन के घर आते हैं। सुभद्रा भी आती है। वधू और पौत्र को देखकर दोनों हर्ष से फूले नहीं समाते हैं। सदन माता-पिता के पैरों पर गिर पड़ता है। सुमन गंगा से लौटकर आती है तो द्वार पर गाड़ियाँ खड़ी देखती है। वह छिपकर उनकी बातें सुनती है। भामा उसका वहाँ रहना अच्छा नहीं समझती। वह अँधेरी रात होने पर भी वहाँ से चल देती है। गजाधर उसे मिलता है। वह उसे बताता है कि तुम सेवा मार्ग पर चलो, तुम्हें शांति मिलेगी। वह उससे अनाथालय का संचालन करने की प्रार्थना करता है। सुमन उसका प्रस्ताव स्वीकार कर लेती है।

चवालीस—एक वर्ष बीत जाता है। गंगा स्नान से लौटते समय एक दिन सुभद्रा और वकील साहब एक भवन के फाटक पर 'सेवासदन' लिखा देखकर गाड़ी रुकवा लेते हैं। सुभद्रा अंदर जाकर सुमन को सेवा कार्य में मग्न देखकर बहुत प्रभावित होती है। वह सुमन को छाती से लगा लेती है। 'सेवासदन' की

बालिकाएँ सुभद्रा को गाना सुनाती हैं। सुभद्रा उन्हें मिठाई बाँटती है। सुमन सुभद्रा के इस अनुग्रह के प्रति आभार प्रकट करती है।

सेवासदन की समस्यायें

(अ) घूसखोरी—जो व्यक्ति स्वयं ऊपर की आमदनी से घृणा करता है, उसके अधीनस्थ कर्मचारी उससे संतुष्ट नहीं रहते। सेवासदन के दारोगा कृष्णचंद्र ने अपनी नीयत को कभी भी बदलने नहीं दिया और अपने मातहतों से सदा भाई-चारे का व्यवहार करते रहे; परंतु मातहतों की दृष्टि में उनके इस व्यवहार का कुछ मूल्य न था। वे कहा करते थे कि ऐसे व्यक्ति से अफसर भी संतुष्ट नहीं रहते। जब अफसर दूसरे थानों में जाते तो दूध-दही की वर्षा होती, आदर-सत्कार की धूम मच जाती; पर कृष्णचंद्र के थाने में यह सब कहाँ नसीब होता! ईमानदारी और विलास में जमीन आसमान का अन्तर होता है। दारोगा कृष्णचंद्र इन सबका आयोजन नहीं कर पाते थे। अत: अफसरों का नाखुश होना स्वाभाविक था। बेईमानी करके धन इकट्ठा नहीं किया, अत: समाज में भी ऐसे लोगों का कोई स्थान नहीं होता। जब वे अपनी लड़कियों के विवाह के लिए रईसों के घर जाते हैं, तो वहाँ भी धन की माँग होती है। बस यहीं से प्रतिक्रिया आरंभ होती है। आदर्शवाद का महल गिरकर चकनाचूर हो जाता है। चारों ओर से ठुकराये जाने के पश्चात् ऊपर की आमदनी से घृणा करने वाले लोग दारोगा कृष्णचंद्र की तरह निश्चय करते हैं—'देख लिया सन्मार्ग पर चलने का यह अपमानजनक फल।' बस, वे भी जेब भरने को ही अपना आदर्श बना लेते हैं।

ऊपर की आमदनी की इच्छा तभी पैदा होती है जब मनुष्य

को पेट भर भोजन नहीं मिलता या उसकी आवश्यकताएँ पूरी नहीं हो पातीं, किंतु एक बार पतन के मार्ग में पैर रख देने के बाद मनुष्य की अंतरात्मा मर जाती है। फिर तो वह पाप को पुण्य समझने के लिए तरह-तरह के तर्क-वितर्क करता है। दारोगा कृष्णचन्द में भी कुछ ऐसी ही भावना उत्पन्न हो जाती है। घूस लेने के बाद वे अपने मन को सब तरह से समझाते हैं। उन्हें यह सोचकर क्षणिक शांति भी मिलती है कि यह उन्होंने पाप पुण्य के लिए ही किया, क्योंकि लड़की को सुखी बनाना पिता का धर्म है और वह तभी सुखी हो सकती है जब घूस द्वारा प्राप्त धन दहेज में देकर एक धनी परिवार में उसका विवाह कर दिया जाय।

(ब) दहेज-प्रथा—प्रेमचंद जी 'सेवासदन' की रचना के समय से ही दहेज-प्रथा के नाश की आवश्यकता का अनुभव करने और तत्संबंधी वांछनीय सुधारों का स्वप्न देखने लगे थे। इस सामाजिक दोष के विरोध में उस समय जो लेख प्रकाशित होते थे उन्हें पढ़कर दारोगा कृष्णचंद्र बहुत प्रसन्न होते और पत्नी से कहते कि अब दो-एक साल में ही यह कुरीति मिटी जाती है। चिंता करने की कोई जरूरत नहीं। यह ठीक है कि समय और जागृति के अनुकूल लोग कुरीतियों का अनुभव करने लगे थे परन्तु धन का लोभ जिस कुरीति की जड़ में हो, उसे नष्ट करना इतना आसान काम नहीं होता। यदि पहले लोग दहेज की माँग साफ-साफ शब्दों में करते थे तो अब उसे बड़ी शिष्ट भाषा में माँगा जाता है। इसका अनुभव दारोगा कृष्णचंद्र को उस समय हुआ जब वे 'वरों' की खोज में घर-घर की खाक छानने लगे। अपनी पुत्री के लिए वर खोजते समय उन्हें यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि वरों का मूल्य उनकी शिक्षा के अनुसार है। कोई चार हजार सुनाता, तो कोई पाँच हजार के आगे बढ़ जाता।

दहेज माँगने वाले सज्जन यदि शिक्षित हुए तो व्यवहार कुशल होने के नाते लड़की के पिता से सहानुभूति तो अवश्य दिखलाते परन्तु एक-न एक ऐसी पख निकाल देते कि दारोगा जी निरुत्तर हो जाया करते थे। कुछ लोग तो अपनी धूर्तता को तर्क का ऐसा आवरण पहनाकर प्रकट करते कि उन्हें आश्चर्य होता। एक ने तो यहाँ तक कह डाला कि भाई, मेरे पुत्र ने बड़ी कठिनाइयों से पढ़ाई की, मैंने कितना खर्च किया परंतु जब सुख के दिन आये तो आपकी लड़की बिना परिश्रम और बिना आपके खर्च किए हुए, उसमें आधा हिस्सा बाँट ले, तो यह अन्याय नहीं तो और क्या है ?

दारोगा कृष्णचंद्र की तरह पंडित उमानाथ को भी दहेज की समस्या परेशान करती है। वे भी शांता के लिए वर खोजते हुए शहर और गाँवों में फिरते हैं। उन्हें यह देखकर आश्चर्य होता है कि यह प्रथा गाँवों में ही नहीं है, जहाँ लोग निरक्षर हैं बल्कि शहरों में भी, जहाँ लोग अपेक्षाकृत धनी, सुखी और पढ़े लिखे हैं, अधिकार जमाये बैठी है। दहेज-प्रथा सब जगह है।

दहेज-प्रथा के कुपरिणामों का विश्लेषण सुमन के चरित्र द्वारा किया गया है। एक रूप-गुण-सम्पन्ना कन्या का, जो सुख और माता-पिता के लाड़-प्यार में पली हो, इनसे विपरीत गुणों वाले व्यक्ति के हाथ में पड़ने से कितना भंयकर परिणाम होता। सुमन और गजाधर का समागम एक संयोग अथवा अभिभावकों की अदूरदर्शिता न थी, वरन् एक मजबूरी थी। सुमन गजाधर के साथ सुखी न रह सकेगी, यह उसकी माता और उसके मामा ने मन ही मन अनुभव कर लिया था, परन्तु दहेज ने उसके लिए सुयोग्य वर अप्राप्य कर दिया और कन्या का अविवाहित रहना असम्भव समझकर रेशम और टाट को जोड़ना उनके लिए आवश्यक हो

गया। व्यवहार कुशल पंडित उमानाथ ने इस मजबूरी के कारण ही सुमन की माता के सामने १५) मासिक पाने वाले और एक अँधेरी कोठरी में गुजर करने वाले अधेड़ उम्र के क्लर्क गजाधर को एक देवरूप में चित्रित किया और उसके साथ सुमन का विवाह करके संतोष कर लिया। मजबूरी का नाम संतोष है। उस संतोष का परिणाम भयावह होता है। सुमन और गजाधर सुखी नहीं रह सके। एक वेश्या बनी और दूसरा संन्यासी।

दहेज की आशंका और उसकी अनिवार्यता एक पिता के हृदय पर भीषण आघात पहुँचती है। वह अपनी पुत्री को दुखी कैसे देख सकता है? उसे सुखी बनाने के लिए वह पाप तक कर सकता है। दारोगा कृष्णचन्द्र ने अपनी आदर्शवादिता का त्याग कर डाला। उन्होंने कभी भी घूस नहीं ली थी, परन्तु दहेज की विभीषिका ने उन्हें मजबूर कर दिया। इसके बाद उन्हें जेल जाना पड़ता है। जेल से लौटने पर उनमें महान परिवर्तन हो हो गया। उनका मानसिक जीवन बुरी तरह प्रभावित हो जाता है। और अन्त में उन्होंने आत्महत्या तक कर डाली। 'दहेज' कन्यापक्ष के लिए कितना भयानक अभिशाप सिद्ध हो सकता है, इसका नमूना सेवासदन में देख लीजिए। कृष्णचंद्र का सुखी परिवार, दहेज के कारण ही धूल में मिल जाता है। वे जेल जाते हैं, सुमन एक दरिद्र के गले पड़ जाती है, पत्नी की असामयिक मृत्यु हो जाती है, शांता को कितने ही कष्ट झेलने पड़ते हैं। इस प्रकार दहेज की समस्या का पूर्ण विश्लेषण सेवासदन में हुआ है।

(स) वेश्यावृत्ति—इस समस्या के दो पहलू हैं। एक तो वेश्या वृत्ति के कारण से संबंध रखता है और दूसरा, उसके कुपरिणामों से। भोली बाई के चरित्र द्वारा लेखक ने दिखाया है कि वेश्याओं की उत्पत्ति, बाल विवाह, वृद्धविवाह और विधवा आदि समस्याओं

के कारण होती है। वेश्याएँ यह घृणित जीवन खुशी से नहीं अपनातीं, वरन् उन्हें मजबूर होकर यह पेशा करना पड़ता है। ऐसी वेश्याओं की संख्या बहुत कम है जो वंशानुगत वेश्याएँ कहला सकती हैं। दुख और कष्टों की मारी हुई और समाज के अत्याचारों से त्रस्त होकर अनेक स्त्रियाँ वेश्यालयों की शरण लेती हैं। दूसरी ओर वासनाओं के गुलाम और धनी वर्ग के अगुआ सेठ-साहूकार वेश्याओंको प्रश्रय देते हैं। सेवासदन के सेठ बलभद्रदास, चिम्मनलाल और अबुलवफा आदि वेश्याओं के समर्थन में तर्क करते हुए उनकी आवश्यकता पर जोर देते हैं। कुछ उन्हें अपनी विषय-भोग की सामग्री और कुछ मनोरंजन का साधन मानते हैं। वेश्या-प्रथा के पनपने और स्थायी होने के कारण समाज के यही अगुआ लोग हैं। 'सुमन' को वेश्या के रूप में देखकर इन लोगों को दुख होने के बजाय सुख ही होता है।

इस समस्या के दूसरे पहलू में, इसके कुपरिणाम स्पष्ट रूप से दिखाए गए हैं। वेश्यायें न केवल पुरुष युवक-समाज को पतन की ओर घसीटती हैं, जैसा कि सदन की कहानी से पता चलता है, वरन् भोलीभाली नवयुवतियों पर भी बहुत बुरा असर पड़ता है। सुमन इसका प्रमाण है। सुमन सुन्दरी है पर साथ ही भोली है। उसमें दूरदर्शिता का अभाव है। समाज का व्यक्ति पर जोर तभी तक होता है, जब तक दोनों का संबंध होता है, संबंध-विच्छेद हो जाने के बाद समाज का व्यक्ति पर कोई अधिकार नहीं रह जाता। यही नहीं, समाज व्यक्ति का मुँह ताकता है और व्यक्ति उसकी उपेक्षा करता है। वेश्या इसका नमूना है। एक भ्रष्ट स्त्री तभी तक समाज से दबती है जब तक दोनों का संबंध है। बहिष्कृत होने के बाद, वह समाज को अपने पैरों से ठुकराती है। वेश्या यही करती है। सुमन इन बातों को समझ सकने में असमर्थ है। भोली बाई का समाज में उसकी पीठ पीछे, असम्मान

होता है, लोग उसे वेश्या कह कर त्याज्य समझते हैं। परन्तु दूसरी ओर वह देवालय में, सभा-समाज में सम्मान पाती है। यह विरोधाभास सुमन की समझ में नहीं आता। वेश्या जीवन का यह नकली सम्मान, स्वतंत्रता और उन्मुक्त सुखोपभोग सुमन को अपनी ओर घसीटता है और वह भोली-भाली युवती उसका शिकार बन जाती है।

लेखक ने इस समस्या का विश्लेषण बड़े व्यञ्जनात्मक ढंग से किया है। एक समाज-सुधारक की भाँति उसकी बुराइयों का वर्णन न करके गुण-दोष की विवेचना का भार पाठक पर ही छोड़ दिया है।

समस्याओं के प्रति लेखक का दृष्टिकोण

प्रेमचन्द जी यथार्थवादी होने के साथ-साथ सुधारवादी भी हैं। इसलिए वे प्रत्येक समस्या का रूप ही सामने रख कर संतुष्ट नहीं होते। वे उसके कारणों और उसके हल की ओर भी समुचित ध्यान देते हैं। उन्हें कुरीतियों से घृणा है; पर कुरीतियों में फँसे हुए व्यक्तियों के प्रति दया भाव है। घूसखोरी करने वाले लोगों की मनोवृत्तियों का उन्होंने अच्छा विश्लेषण किया है। रोग का कारण समझे बिना उसका इलाज करना मूर्खता है। 'घूसखोरी' की जड़ उन्होंने ढूँढ़ निकाली है। 'घूसखोरी' का एक कारण है—लोगों की वे आवश्यकताएँ जिन्हें पूरा करना मनुष्य के लिए जरूरी है। परिस्थितवश सज्जन भी असज्जन बन जाता है। इसी तरह वेश्यायें भी परिस्थितिवश ही इस प्रकार का घृणित-जीवन बिताती हैं। भोली बाई, सुमन और अन्य वेश्याएँ सभी मजबूर होकर वैसा जीवन बिताती हैं। यदि उन्हें अवसर दिया जाय, तो वे ऊपर उठ सकती हैं। उपन्यास भर में कहीं भी वेश्या-जीवन के वे घृणित पहलू, जो व्यभिचार, धोखा-धड़ी आदि के लिए

बदनाम हैं, देखने को नहीं मिलते। भोली बाई नाच गाने द्वारा अपना जीवन-निर्वाह करती है। सुमन वेश्या बनती है परन्तु व्यभिचार न करने का संकल्प कर लेती है। सब जगह प्रेमचंद की सहानुभूति का दर्शन होता है।

अब समस्याओं के हल की ओर ध्यान दीजिए। दहेज की प्रथा तभी मिट सकती है, जब नवयुवक समाज इस ओर ध्यान दे। सदन ने इस विषय में आदर्श रक्खा है। वह माता-पिता की इच्छा के अनुसार दूसरा विवाह करने के लिए तैयार नहीं होता। अपने परिश्रम द्वारा वह अपनी जीविका कमाता है और शांता को पत्नी-पद देने में सफल होता है। वेश्याओं के लिए सेवा-सदन की स्थापना की गई। विपत्तियों की मारी हुई बहुत-सी स्त्रियाँ, जो कोई काम-धंधा नहीं कर सकतीं, वेश्यावृत्ति करने के लिए मजबूर होती हैं। प्रेमचंद जी ने उनके लिए सेवा-सदन की व्यवस्था की है। उसमें रहकर, वे कढ़ाई, बुनाई, सिलाई जैसे घरेलू धंधे करके, अपना पेट सम्मानपूर्वक भर सकती हैं। पेट की ज्वाला को शांत करने के लिए, तब उन्हें अपना सतीत्व और शरीर बेचने की आवश्यकता न रहेगी।

कथा-विकास और उत्सुकता वृद्धि

सेवा-सदन में कथा-विकास का ढंग सीधा-सादा है। सुमन की अवस्था बढ़ती जाती है—कली कुछ दिनों में खिलकर वायु-मंडल में अपना सौरभ वितरित करने वाली है—यह देख कर माता-पिता को शांति नहीं मिलती। पिता कृष्णचंद्र और माता गंगाजली को पुत्री को किसी सुयोग्य वर के हाथों में सौंप देने की चिंता है। विवाह के लिए दहेज चाहिए। वह कहाँ से आए? उसके बिना अच्छा वर नहीं मिलता। परिस्थिति की जटिलता उन्हें रिश्वत लेने के लिए बाध्य करती है। कृष्णचंद्र बहुत कुछ

आगा-पीछा सोचने के बाद यह कुकर्म कर ही डालते हैं। ऐसे कार्य उन्होंने पहले नहीं किए थे, इसलिए उन्हें फल भी भोगना पड़ता है। इसे अस्वाभाविक भी नहीं कहा जा सकता परन्तु प्रेमचन्द की विशेषता इस बात में है कि वे कृष्णचंद्र को फल भोगते हुए उस समय तत्काल ही नहीं दिखा देते। पाठक यह अवश्य समझता है कि महंत जी का मुख्तार असंतुष्ट हो गया है पर यह पोल किस तरह खुलेगी, इसका अनुमान वह नहीं कर पाता। दूसरी ओर स्वयं कृष्णचंद्र भी भूल जाते हैं कि उन्होंने रिश्वत ली है और वे अपनी अंतरात्मा को किसी तरह समझा लेते हैं। साथ ही गंगाजली को भी। पाठक रिश्वत की घटना को भूलकर सुमन के विवाह की तैयारी में उलझ जाता है। विवाह की तैयारी करीब-करीब पूरी हो चुकती है, केवल तिलक जाने भर की देर है। गंगाजली चाँदी के थाल में तिलक की सामग्री सजा रही है। पाठक अंदाजा भी नहीं कर पाता और एकाएक पुलिस अफसर आ धमकता है। विवाह का सारा आयोजन बेकार हो जाता है। पाठक के मन को गहरा धक्का लगता है और वह अप्रत्याशित परिणाम को जानने के लिए उत्सुक हो उठता है।

कथा-विकास के लिए प्रेमचन्द जी बराबर नई-नई समस्याएँ उपस्थित करते चलते हैं—यह उनकी विशेष टेकनीक है। ये समस्याएँ बड़ी स्वाभाविक परिस्थितियों में जन्म लेती हैं। साथ ही वे पात्रों के शील-गुणों के अनुरूप रखी जाती, जिससे चरित्र विकास में पूरी सहायता मिलती है। दहेज की कठिनाई से कृष्णचंद्र के मन में घूस लेने की प्रवृत्ति पैदा होती है, वे घूस ले लेते हैं, तब समस्या चरम सीमा पर पहुँचती है, और उनके जेल जाते ही उसका बल इतना कम पड़ जाता है कि पाठक का मन नहीं रमता। उसी समय प्रेमचंद, दूसरी समस्या—वेश्या—की खड़ी कर देते हैं पाठक का मन फिर उत्सुक हो उठता है। सुमन

विवाहित होकर गजाधर के घर पहुँचती है और भोलीबाई के सम्पर्क में आती है। बस, यहीं से वेश्या-समस्या का प्रारम्भ होता है। पं० पद्मसिंह के घर भोलीबाई का नृत्य और गजाधर का सुमन को निकाल देना, समस्या का चरमोत्कर्ष है। सुमन के वेश्या बन जाते ही समस्या का बल घट जाता है। उसके साथ ही पाठक की जिज्ञासा को फिर बढ़ाने के लिए प्रेमचन्द सदन का प्रवेश कराते हैं और शांता के विवाह की दुर्घटना दिखाकर पाठक को बराबर उत्सुक बनाए रखते हैं।

समस्याओं और घटनाओं के उपयोग में प्रेमचन्द को हमेशा इस बात का ध्यान रहता है कि कथानक की एकता और संगठन हो जाय। प्रत्येक समस्या स्वतंत्र अस्तित्व नहीं रखती, एक दूसरी को जन्म देती है। एक घटना या समस्या को निकाल दीजिए, समूचा कथानक बिखर जायगा।

सेवासदन की कथा का विकास, लेखक ने उन्हीं तत्वों के आधार पर किया है जिनका बीज सुमन के चरित्र में, बाल्यकाल में ही पड़ चुका था। वह सुन्दर थी और सुकुमार थी, पर साथ ही उसमें विलासिता और सुख-लिप्सा की भावना भी थी जिसने उसे अत्यधिक चंचल और अपनी स्थिति से असंतुष्ट बनाने में बड़ा सहारा दिया। बचपन में वह अच्छा खाती और अच्छा पहनती थी, उसकी सारी इच्छाएँ पूरी होती थीं। दूसरी ओर विवाह में उसे पति मिला निर्धन और स्वभाव का कृपण। वहाँ माँ-बाप उसका मुँह जोहते थे, यहाँ रोटियों के लाले थे। पति भी स्वभाव का कठोर था। परिणाम यह हुआ कि वह थोड़े ही दिनों में अपनी स्थिति से असंतुष्ट हो गई। पास-पड़ोस की औरतों के बनाव-शृंगार ने उसके हृदय की अग्नि को और भी प्रज्वलित कर दिया। कथा-विकास का यह क्रम सभी

प्रकार से स्थिति के अनुकूल होने से रोचक और स्वाभाविक बन गया है।

कथा सीधी-सादी है, केवल सुमन से उसका प्रधान सम्बन्ध है। उपन्यास की प्रधान नायिका-सुमन पर अपनी दृष्टि केंद्रित करके उस पर पड़ने वाले प्रत्येक प्रभाव का प्रेमचंद जी ने विश्लेषण किया है। गाँव के आडम्बरविहीन वातावरण में पलनेवाली इस बालिका में विवेक की कमी है। विवाह के बाद जब वह शहर में आती है, तो वहाँ की सारी बातों को वह अच्छा ही समझ लेती है। धनियों, तिलकधारी साधुओं, के चरित्र को समझने की उसमें शक्ति बिल्कुल नहीं है। वेश्याओं का ऊपरी सम्मान उसकी नजरों में असली मालूम होता है। उसे पहले भोली से घृणा थी पर धीरे-धीरे उसकी घृणा सद्भावना और मित्रता में बदलने लगती है। सुमन का शहर के वातावरण में इस प्रकार परिवर्तित होना बड़े मनोवैज्ञानिक ढंग से दिखाया गया है। इससे कथा के विकास में बड़ी सहायता मिली है।

घटना-विशेष के सम्बन्ध में पाठकों की उत्सुकता बढ़ाने के लिए प्रेमचंद के पास अनेक साधन हैं। किसी घटना के भावी परिणामों की भयंकरता का अनुमान पात्रों की आशंका के सहारे पाठक को हो जाता है, बस उसका मन उस घटना में एकाग्र होकर रम जाता है। लेखक एक जटिल स्थिति की रचना करता है, फिर उससे उत्पन्न होने वाले सम्भावित परिणामों की व्याख्या परोक्ष रूप से इस प्रकार करता है कि पाठक दत्तचित होकर कथा पढ़ने लगने लगता है। दहेज की आवश्यकता और पुत्री के जीवन को सुखी बनाने की कामना कृष्णचन्द्र को घूस लेने के लिए प्रेरित करती है। स्थिति इतनी सरल नहीं क्योंकि इस कामना और उनकी अन्तरात्मा में भीषण संघर्ष होता है। पाठक स्पष्ट देखता है कि रिश्वत लेने का विचार विजयी होगा, परन्तु साथ

में कृष्णचन्द्र की अव्यावहारिकता—जिसका परिचय अकेले ही सारी रिश्वत पचा जाने में मिलता है, पाठक की नजरों में चढ़ जाती है और वह भावी कुपरिणाम का थोड़ा अनुमान लगा लेता है। उसके इस 'अनुमान' को सहारा देने के लिए लेखक ने आधार पहले से तैयार कर रक्खा है। उसने कह दिया है कि कृष्णचन्द्र से न तो उसके मातहत खुश थे और न अफसर। जब एक बार घूस ली भी तो उन्हें हिस्सा न दिया। महन्त जी के मुख्तार साहब का कमीशन भी उन्होंने हड़प लिया। ऐसी स्थिति में एक मन्दबुद्धिवाला पाठक भी कल्पना कर सकता है कि इसका परिणाम बुरा ही होगा। अपनी कल्पना और अनुमान को सत्य उतरते देखने के लिए पाठक का कथा में दत्तचित्त हो जाना स्वाभाविक ही है। सुमन के पथ भ्रष्ट होने के पहले ही, इसी प्रकार, पाठक को उसकी चंचलता, उसके रहन-सहन, सम्पर्क आदि से ऐसे ही परिणाम की आशंका हो जाती है।

'सेवासदन' का संदेश

सामाजिक कुरीतियाँ, जैसे दहेज, वेश्या आदि से होने वाली हानियाँ किसी से छिपी नहीं हैं। इनका सबसे अधिक प्रभाव मध्यवित्त वाले लोगों पर पड़ता है, जिसका नमूना हम कृष्णचन्द्र और गजाधर के जीवन में पाते हैं। बड़े लोगों पर इनका कोई प्रभाव नहीं पड़ता, वे दिन-दहाड़े पाप करें, तो भी सब न्यायसंगत है परन्तु समाज की रीढ़ तो मध्यम श्रेणी के लोग ही हैं। इन समस्याओं का हल उन्हीं लोगों के लिए उपयोगी है।

प्रथम संदेश है नवयुवक और नवयुतियों के लिए जो, शहर की तड़क-भड़क से आकर्षित होकर अपना जीवन नष्ट कर बैठते हैं। सुमन का जीवन उन अनेक साधारण युवक और युवतियों की आँखें खोलने के लिए पर्याप्त है जो हजारों की संख्या में गाँवों

से आकर शहर में बसते जा रहे हैं। शहरों में अनेक प्रलोभन हैं। ग्राम-वधुएँ उनका शिकार न बनें, सेवासदन यह पहली शिक्षा देता है।

दूसरा संदेश है सुधारवादियों के लिए। समाज में सच्चा और स्थायी सुधार तभी हो सकता है जब सुधारक का चरित्र उच्च कोटि का हो। शहरों में कितने ही रईस और धनी नाम-वरी के लिए सुधार का दम भरने लगते हैं। और कुछ सच्ची लगन के उत्साही कार्यकर्ता उनका मुँह ताकते हैं। सेठ चिम्मन-लाल आदि ऐसे ही लोग हैं। वे अमीर हैं। एक ओर वे विधवा-श्रम खोलते हैं और दूसरी ओर वेश्यालयों की शोभा बढ़ाते हैं। मुँह में राम बगल में छूरी, समाज का कल्याण ये लोग क्या करेंगे ? सुधार के लिए धन की नहीं, सच्चाई की आवश्यकता है। विट्ठलदास जैसा एक सुधारक और पद्मसिंह जैसे उत्साही लोग सच्चा सुधार कर सकते हैं। सुधार के लिए सभाएँ, कौंसिल की सदस्यता आदि कोई ठोस साधन नहीं हैं। उसके लिए कोई व्यावहारिक योजना चाहिए जो जनता में चल सके। सेवासदन उसका एक नमूना है। प्रेमचन्द जी ने सुधारक को ठोस काम करने के लिए प्रेरित किया है।

तीसरा सन्देश है उन पतित लोगों के लिए, जो उठाने के लिए दूसरों का मुँह ताकते हैं। यह ठीक है कि समाज द्वारा प्रताड़ित औसत व्यक्तियों को—जैसे वेश्याएँ—ऊपर उठाने के लिये एक सहारे की आवश्यकता है पर साथ ही पतित में भी कुछ आत्मविश्वास और ऊपर उठने की सच्ची लगन होनी चाहिये। अच्छे मार्ग पर चलने के लिये कष्ट सहना ही पड़ता है। वेश्याएँ जो विलास और सुख की जीवन बिताती हैं, पहले सुमन की तरह कष्ट सहने की आदत डालने पर ही, घृणित जीवन से मुक्त

हो सकती हैं, जहाँ वे कताई-बुनाई, सिलाई, जैसे घरेलू उद्योग-धन्धों के सहारे अपनी जीविका कमा सकती हैं।

चौथा संदेश है आधुनिक फैशनपरस्त शहरी नवयुवकों के लिए जो सुधार के क्षेत्र में अनुगामी बनते हैं पर कर कुछ नहीं पाते। ऐसे लोगों के लिए सदन एक पथ-प्रदर्शक का काम करता है। वह परिश्रमी और स्वावलम्बी है। तभी वह साहस करके, माता-पिता का विरोध करते हुए शांता जैसी परित्यक्ता और कलंकिनी नारी को अपना सकता है। वे लोग क्या सुधार कर सकेंगे जो अपने माता-पिता के बल पर गुलछर्रे उड़ाते हैं और सुधार की डींग भरते हैं।

कथोपकथन

उपन्यास में कथोपकथन का समावेश नाटकों के प्रभाव से हुआ है और इसका प्रयोग कथा-साहित्य में अधिकाधिक होता जा रहा है। कथोपकथनों से उपन्यास में स्वाभाविकता इसलिए बढ़ जाती है कि उनके द्वारा हम पात्रों को जीवित मनुष्य की भाँति बोलता हुआ पाते हैं। दूसरे वर्णनों में पाठक का मन उतना नहीं रमता, जितना कथोपकथन में। लम्बे वर्णन के बाद जब हम कथोपकथन पर पहुँचते हैं, तो मानों एक जान-सी आ जाती है। प्रेमचन्द जी ने कथोपकथन का खुल कर प्रयोग किया है।

कथोपकथन द्वारा कथा का विकास—उपन्यासकार सामने आकर घटनाओं का वर्णन कर सकता है, परन्तु कथा के विकास में कथोपकथन काफी सहायता करते हैं। गल्पकार पर्दे की आड़ में छिप जाता है और पात्रों के मुँह से आने वाली घटनाओं का आभास पाठक को करा देता है। सुभद्रा और पद्मसिंह की बातचीत से, जो भोलीबाई के नाच के विषय में होती है, बिट्ठल-

दास से शर्मा जी का बिगाड़ होने का आभास मिल जाता है, सुभद्रा की बातों से प्रभावित होकर शर्माजी ऐसा काम कर डालते हैं जिसका सुमन के जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ता है।

पद्म०—मैंने प्रीतिभोज का प्रस्ताव किया था, किन्तु इसे कोई स्वीकार नहीं करता, लोग भोलीबाई का मुजरा कराने के लिए अनुरोध कर रहे हैं।

सुभद्रा०—अच्छा तो उन्हीं की मान लो, कौन हजारों का खर्च है..........

पद्म०—खर्च की नहीं, सिद्धान्त की बात है।

सुभद्रा०—भला अबकी बार सिद्धान्त के विरुद्ध ही सही।

पद्म०—बिट्ठलदास किसी तरह राजी नहीं होते। पीछे पड़ जायँगे।

सुभद्रा०—उन्हें बकने दो। संसार के सभी आदमी उनकी तरह थोड़े ही हो जायँगे।

बस इसी स्थल से उपन्यास की कथा का विकास पूर्णरूप से होना आरम्भ हो जाता है।

कथोपकथनों द्वारा पात्रों का परिचय—नये पात्रों का प्रवेश कराने में कथोपकथनों से बड़ी सहायता मिलती है और पात्रों का प्रवेश बड़ी स्वाभाविकता के साथ होता है। गंगाजली और उमानाथ के वार्तालाप में गजाधर का प्रवेश होता है :—

गंगा—भला, किसी तरह तुम्हारी दौड़-धूप तो ठिकाने लगी। लड़का पढ़ता है न।

उमा०—पढ़ता नहीं नौकर है। एक कारखाने में १५) का बाबू है।

गंगा—घर-द्वार है न ?

उमा०—शहर में किसके घर होता है। सब किराए के घर में रहते हैं।

गंगा—भाई-बंद माँ-बाप हैं ?

उमा०—माँ-बाप, दोनों मर चुके हैं और भाई-बंद शहर में किसके होते हैं ?

गंगा—उमर क्या है ?

उमा०—यही, कोई तीस साल के लगभग होगी।

गंगा—देखने-सुनने में कैसा है ?

उमा०—सौ में एक·······नाम गजाधर प्रसाद है।

गजाधर के व्यक्तित्व की पृष्ठभूमि का इतना सुन्दर वर्णन प्रत्यक्ष ढंग से होना कठिन था। इसमें कितनी स्वाभाविकता है !

कथोपकथनों में व्यंजना—सेवासदन के कुछ कथोपकथन बड़े गूढ़ हैं। कृष्णचन्द्र रिश्वत ले चुके हैं, भय ने गला दबा रक्खा है। अपनी पत्नी से वे कितने व्यंजनात्मक ढंग से बात करते हैं :—

अन्त में कृष्णचन्द्र बोले—यदि तुम नदी के किनारे खड़ी हो और पीछे से शेर तुम्हारे ऊपर झपटे तो क्या करोगी ?

गंगाजली इस प्रश्न का अभिप्राय समझ गयी, बोली—नदी में चली जाऊँगी।

कृष्ण०—चाहे डूब ही जाओ।

गंगा—हाँ, डूब जाना शेर के मुँह में पड़ने से अच्छा है।

कृष्ण०—अच्छा, यदि तुम्हारे घर में आग लगी हो और दरवाजों से निकलने का रास्ता न हो तो क्या करोगी ?

गंगा—छत पर चढ़ जाऊँगी और कूद पड़ूँगी।

व्यंजना द्वारा कृष्णचन्द्र अपनी स्थिति पत्नी के सामने रख देते हैं। ऐसे कथोपकथन बड़े सुन्दर होते हैं।

कथोपकथनों की स्वाभाविकता—पात्र के शील और गुणों के अनुरूप जब कथोपकथन होते हैं, तब वे स्वाभाविक और कला पूर्ण कहलाते हैं। सेवासदन के अबुलवफा और अब्दुल्लतीफ दुष्ट प्रकृति के व्यक्ति हैं, उनके कथोपकथन स्वभाव के अनुरूप शरारत से भरे हैं :—

अब्दुल्लतीफ—वल्लाह, हम आपके नजर इन्तखाब के कायल हैं।..............उसके बालखाने के सामने रंगान मिजाजों का अम्बोह जमा रहता है। मुखड़ा गुलाब है और जिस्म तपाया हुआ कुन्दन। जनाब, मैं आपसे अजरुये ईमान कहता हूँ कि ऐसी दिलफरेबी सूरत मैंने न देखी थी।

अबुलवफा—भाई उसे देखकर भी कोई पाकबाजी का दावा करे तो उसका मुरीद हो जाऊँ। ऐसे लाले बेबहा को गूदड़ से निकालना आप ही जैसे हुस्न शिनाश का काम है।

+ + +

चलिए आज आप भी पुरानी मुलाकात ताजी कर आइये। आपकी तुफैल में हम भी फैज पा जायँगे।

इनका यह वार्तालाप उतना ही घृणित है, जितना ये लोग हैं।

इसी प्रकार विट्ठलदास के कथनों में खंडनपन, शर्मा जी के कथन में उनका सीधापन और सुभद्रा के कथनों में स्त्री सुलभ व्यंग्य का आनन्द हमें मिलता है। इन्हीं भावों के अनुरूप भाषा ने उन्हें और भी सजीव बना दिया है।

कथोपकथन के दोष—कहीं-कहीं पर 'सेवासदन' के पात्रों के कथोपकथन असम्बद्ध विषयों से युक्त हैं जिनका कथानक से कोई सम्बन्ध नहीं। कभी-कभी उपन्यास लेखक समसामयिक समस्याओं पर विचार प्रकट करने में अपने को रोक नहीं पाता। इसीलिए उन्हें वह पात्रों के मुँह से बलपूर्वक कहला देता है—ऐसा सेवासदन में कई स्थलों पर मिलता है।

सुधारों का विरोध करते हुए मदनसिंह एक लम्बा-चौड़ा व्याख्यान दे डालते हैं। मुसलमान सदस्यों के कथोपकथन लंबे और साम्प्रदायिक विचारों से ओत-प्रोत हैं। कुँवर साहब हिंदी-साहित्य का राग अलापते नजर आते हैं। प्रोफेसर रमेशदत्त और कुँवर साहब दार्शनिक समस्याओं पर वादविवाद कर बैठते हैं। शांता और ईसाई महिलाओं के बीच भारतीय विवाह-पद्धति की आलोचना होती है। ऐसे असम्बद्ध कथोपकथन का स्पष्टरूप से पता चल जाता है। पाठक को उनसे कभी-कभी अरुचि हो जाती है, विशेषत: उन स्थानों पर जब वे आवश्यकता से अधिक लम्बे हो जाते हैं।

देशकाल की छाप

उपन्यास लेखक के विचारों पर उस युग और देश के अनुकूल परिस्थितियों की छाप अवश्य रहती है, जिनमें वह जन्म लेता है, बढ़ता है और जिनसे प्रेरणा पाता है। 'सेवासदन' में तत्कालीन सामाजिक समस्याओं का समावेश हुआ है। 'सेवासदन' का जन्म उस समय हुआ जब भारत में सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक-सभी प्रकार की क्रान्तियाँ एक साथ आरम्भ हुई थीं। पाश्चात्य विचारों के सम्पर्क में आकर भारतीय विचारधारा बड़ी उथल-पुथल की अवस्था में थी। समाज में कुछ ऐसे थे जिन्होंने अँग्रेजी पढ़ी थी, वे उच्चवर्ग के लोग थे। पढ़-लिखकर उन्हें अपनी हीन-दशा का अनुभव हुआ और उन्होंने सुधार-आंदोलन छेड़ दिया। 'सेवासदन' में पं० पद्मसिंह और विट्ठलदास इस सुधार-आंदोलन का नेतृत्व करते हैं। वेश्यावर्ग का सुधार, दहेज की प्रथा का विरोध जैसे महत्वपूर्ण प्रश्न उठाये जाते हैं। आंदोलनों में इनका विरोध भी खूब होता था। दहेज की भावना, विरोध के होते हुए भी सबल थी, पद्मसिंह दहेज पर विवाह करने के लिए तैयार होते हैं। कृष्णचंद्र 'दहेज' की कठनाई का

सामना न कर सकने के कारण बरबाद हो जाते हैं और सुमन का भी जीवन नष्ट हो जाता है।

उच्चवर्ग के जो लोग सुधारों में दिलचस्पी ले रहे थे उनकी भी विचित्र अवस्था थी। उन्हें रुचि थी, पर साहस न था। कुछ लोग तो नाम के लिए मरते थे, कुछ पद के लिए और कुछ धन के लिए। कुँवर अनिरुद्ध सिंह को लीजिए, वे लोग विलायत घूम आये हैं, उन्हें अँग्रेजी संगीत और साहित्य से विशेष प्रेम है, डा० श्यामचरण कौंसिल के मेम्बर हैं, वे प्रस्तावों द्वारा सुधार का स्वर अलापते हैं, सेठ चिम्मनलाल चन्दे देकर सहायता करना चाहते हैं, पर राजभक्त इतने हैं कि खुलकर सरकार की नजर में नहीं चढ़ना चाहते। साथ ही प्रभाकर राव, विट्ठलदास और पद्मसिंह जैसे सच्चे उत्साही लोग भी हैं। इस प्रकार तत्कालीन प्रायः सभी प्रमुख वर्गों का सच्चा चित्र 'सेवासदन' में देखने को मिलता है।

देश में स्वायत्त-शासन स्थापित हो चुका था। म्युनिसिपल शासन में जनता के प्रतिनिधि चुने जाते थे। उनकी दलबंदी के सुन्दर और स्वाभाविक चित्र 'सेवासदन' में हैं। साम्प्रदायिकता का जहर किस तरह अपना काम कर रहा था, उसका वर्णन भी मिलता है। मुसलमानों में कुछ लोग ऐसे हैं जो हिन्दुओं की हर एक योजना का विरोध करना चाहते हैं, चाहे वह योजना लाभप्रद ही क्यों न हो। वे हिन्दुओं की निःस्वार्थ भावना पर विश्वास ही नहीं करते। दूसरी ओर कुछ ऐसे राष्ट्रीय विचारों के मुसलमान भी हैं, जो देश का हित पहचानते हैं और वे मुखालिफत के लिए मुखालिफत करना पसंद नहीं करते।

सेवासदन में तत्कालीन हिन्दी-साहित्य, पत्रकार-कला, संगीत आदि की दशा का भी वर्णन है। उस समय जेलों का कितना

अस्वाभाविक प्रभाव कैदियों पर पड़ता था, इसका चित्र भी हम कृष्णचंद्र के चरित्र में देखते हैं। पुलिस और महंत के व्यवहार अलग देख लीजिए। इस दृष्टिकोण से सेवासदन का ऐतिहासिक महत्व भी है।

यथार्थवाद और आदर्शवाद

मनुष्य में कमजोरी और बल दोनों का अद्भुत मिश्रण है। एक ओर वह अपना मतलब गाँठने के लिए झूठ, चोरी, व्यभिचार और हत्या आदि भयानक कृत्य कर सकता है और दूसरी ओर प्रेम, सेवा और उपकार जैसे महान आदर्शों के पीछे अपना जीवन उत्सर्ग कर देता है। मनुष्य-स्वभाव के ये दोनों पहलू महत्वपूर्ण हैं। साथ ही जीवन की उत्कृष्टता इसी बात में है कि कमजोरियों पर विजय पायी जाय तथा आदर्श को अपनाया जाय। साथ ही कमजोरियों की उपेक्षा करना भयानक भूल है। यही कमजोरी यथार्थ है और उससे लोहा लेते हुए आगे बढ़ना आदर्श है। यथार्थ से युद्ध, पालन नहीं। 'सेवासदन' में इन दोनों तत्वों का समन्वय है।

पहले यथार्थ को लीजिए। संसार का नग्नरूप प्रेमचन्द जी की नजरों से नहीं बच सका है। संसार में ईमानदारी, सच्चाई आदर्श है, पर उसका मूल्य कितना है। कृष्णचंद्र के पश्चात्ताप का कारण भी यही है। दहेज को बुरा कहा जाता है, परन्तु चतुर लोग किस तरह दहेज माँगते हैं—'दारोगा जी, मैंने लड़के को पाला है, सहस्रों रुपये पढ़ाई में खर्च किये हैं। इससे आपकी लड़की का भी उतना ही लाभ होगा जितना मेरे लड़के का। तो आप ही न्याय कीजिए।............'

आदर्श दारोगा का कहीं आदर नहीं, सम्मान नहीं। अफसर नाराज हैं और मातहत असंतुष्ट। यह वास्तविकता है।

दूसरे चित्र में, वास्तविकता को बड़ी व्यंग्यमयी भाषा में दिखाया गया है। महंत रामदास जी कहने को वैरागी हैं पर उनमें 'राग' की चरम सीमा है। टट्टी की ओट शिकार खेलना आज की दुनियाँ की रीति है—'उनके यहाँ का सारा कारोबार' श्री बाँकेबिहारी जी के नाम पर होता था। श्री बाँकेबिहारी जी लेन-देन करते थे और (३१) सैकड़े (!) से कम सूद न लेते थे, वही रेहननामे बैनामे लिखाते थे। "बाँकेबिहारी" की रकम दबाने का किसी को साहस न होता था..........।" "ठाकुर जी संसार की रीति पर चलते थे।"

वेश्याएँ समाज में घृणित समझी जाती हैं। साथ ही वे समाज को पैरों-तले रौंदती भी हैं। बड़े-बड़े सेठ-साहूकार उनके तलवे चाटते हैं, मंदिर और धर्मस्थान भी उनके लिये बन्द नहीं। समाज द्वारा परित्यक्त और उपेक्षित वेश्यावर्ग, समाज की छाती पर मूँग दलता है।

दूसरी ओर 'सेवासदन' में ऐसा आदर्श खड़ा किया गया है, जो व्यावहारिक भी है। सेवासदन की स्थापना करके वेश्या-समस्या की जड़ पर कुठाराघात किया गया है। सेवासदन कोरी योजना नहीं, एक सच्चा हल है। उस हल तक पहुँचने के लिए जिन सीढ़ियों पर चढ़ना पड़ता है, वे स्पष्टतः हमारे सामने रक्खी गई हैं, जैसे वेश्याओं के पास जाना और उनमें सुधार की भावना जाग्रत करना, उन्हें गृहस्थ-जीवन बिताने की प्रेरणा देना और अपनी भावी संतानों को नरक से निकालने का उपाय बताना। यह आदर्श है पर आकाश-कुसुम नहीं। इसी प्रकार 'दहेज' की समस्या का आदर्श हल सदन जैसे नवयुवकों की आत्मनिर्भरता और परिश्रम पर निर्भर है। 'सदन' इस विषय में नवयुवकों के लिए आदर्श है। बिट्ठलदास की लगन और पद्मसिंह शर्मा की त्यागमय उदारता, सुधारवादियों के लिए अंधकार में प्रकाश

का काम देती है। 'सेवासदन' में वर्णित आदर्शवाद की विशेषता यही है कि वह समझ में आने वाली व्यावहारिक वस्तु है।

चरित्र-चित्रण

उपन्यास में चरित्र-चित्रण के महत्व को बताते हुए विलियम हेनरी हडसन ने लिखा है—'मुझे यह कहते हुए तनिक भी संकोच नहीं होता कि उपन्यास के दो तत्वों (कथानक और चरित्र-चित्रण) में चरित्र-चित्रण ही प्रधान है और वे ही उपन्यास जिनमें उच्चकोटि के माने जाते हैं, चरित्र-चित्रण पर अधिक जोर दिया गया है।" चरित्र-चित्रण का महत्व इसीलिए अधिक है कि उपन्यास की सारी घटनाएँ पात्रों के कार्यों पर निर्भर करती हैं और पात्रों के सारे कार्य उनके स्वभाव के अनुरूप होते हैं। उनके स्वभावों से इस प्रकार मिलते-जुलते हैं कि यद्यपि उनका शारीरिक अस्तित्व नहीं होता, फिर भी वे इसी लोक के प्राणी जान पड़ते हैं। "अपने स्वभाव के कारण ही वे हमारे मन पर आधिपत्य जमा लेते हैं। हम उनसे इस प्रकार अच्छी तरह परिचित हो जाते हैं, उन पर विश्वास करते हैं, उनके साथ हमारी इतनी अधिक सहानुभूति हो जाती है, हम उनसे इस प्रकार स्नेह या घृणा करने लगते हैं कि मानों वे भी हाड़-मांस के बने जीव हों।" 'सेवा-सदन' में सुमन, सदन, पद्मसिंह आदि हमारी ही तरह के मनुष्य हैं जिनमें अच्छाइयाँ भी हैं और बुराइयाँ भी।

पात्रों की सृष्टि—जिस प्रकार 'मनुष्य' को हाथों से नहीं बनाया जा सकता, उसी प्रकार 'पात्रों' में प्राण भरने की कला अज्ञात है। लेखक केवल अपनी कल्पना, मानवी स्वभावों के सूक्ष्म ज्ञान और वाह्य परिस्थितियों के मन पर होने वाली प्रतिक्रियाओं के अनुभव से पात्रों की सृष्टि करते समय उनके साथ एकाकार हो जाना ही लेखक की प्रतिभा है। उपन्यास को

लिखने के बाद स्वयं लेखक आश्चर्य में पड़ जाय कि मैंने यह सब कैसे लिख डाला। विलियम थैकरे ने, जो अँग्रेजी साहित्य का प्रमुख उपन्यासकार है, लेखक की इस शक्ति को 'ओकल्ल' नाम से पुकारा है। लिखते समय वह शक्ति उसके हाथों से मानों कलम ले लेती थी। थैकरे कहता है—"मैं पात्रों को अपने नियंत्रण में नहीं रखता, मैं स्वयं उनके हाथों में रहता हूँ, वे जहाँ चाहें मुझे ले जाँय।" 'पात्रों में प्राण भरना इसी को कहते हैं। इससे पात्रों की स्वतंत्र सत्ता हो जाती है।'

प्रेमचन्द के पात्रों की सत्ता का प्रमाण यही है कि हम उनके दुख में रोते हैं। उनके सुख में हँसते हैं। उपन्यास के प्रारम्भ में कृष्णचन्द्र जैसे आदर्श दारोगा पर हमारी श्रद्धा होती है, व्यावहारिकता के अभाव में रिश्वत लेने पर, उनके फँस जाने पर, हमारे मन में सहानुभूति जाग्रत होती है और अन्त में उनकी दुर्दशा और आत्महत्या पर हमें अपार दुख भी होता है। सुमन की चंचलता, मूर्खता और असंतोष पर हमें झुँझलाहट आती है और सदन के घर से, घोर परिश्रम और सेवा करने पर बहिन के द्वारा उपेक्षिता होने पर हमारे मन में वेदना भी उत्पन्न होती है। पात्रों के प्रति हमारे इन मनोभावों का क्या कारण है? यहाँ हमें थैकरे के शब्द फिर दुहरा लेने चाहिए। प्रेमचन्द अपने पात्रों में यह जीवन भरते समय स्वयं उनमें लीन हो गए होंगे, अन्यथा पात्रों के मनोभावों को वे इस प्रकार का मर्मस्पर्शी भाषा में न व्यक्त कर सकते और उनके संवादों में इतनी स्वभाविकता न ला सकते।

चरित्र-चित्रण की प्रत्यक्ष-शैली—जिस प्रकार चित्रकार चित्र में रंग भरने के पूर्व पहले उसकी एक रूपरेखा तैयार कर लेता है, उसी प्रकार प्रेमचन्द जी अपने पात्रों को रंगमच पर संघर्ष के बीच लाने के पूर्व, उनके सम्बन्ध में प्रत्यक्ष रूप से थोड़ी टीका-

टिप्पणी अवश्य कर देते हैं, जिसमें पाठक अपने मन के पात्र के व्यक्तित्व की साधारण रूपरेखा तैयार कर ले और उपन्यास के विकास में उन पात्रों के कार्यों को उसकी रूपरेखा से प्रकाश में देखें। दारोगा कृष्णचन्द्र को लीजिए—प्रेमचंद आरंभ में ही उनके सम्बन्ध में कहते हैं—

"पश्चात्ताप के कड़ुवे फल कभी न कभी सभी को चखने पड़ते हैं लेकिन और लोग बुराइयों पर पछताते हैं, दारोगा कृष्णचन्द्र अपनी भलाइयों पर पछता रहे थे।..........उन्होंने निस्पृह भाव से अपना कर्तव्य-पालन किया था। लेकिन इतने दिनों के बाद आज वह अपनी सरलता और विवेक पर हाथ मल रहे थे।"

कृष्णचन्द्र के चरित्र की कुंजी उनके हृदय का यही अन्तर्द्वन्द्व है। इसी प्रकार सुमन और शांता के चरित्र का बीज हमें उनके बाल-स्वभाव में मिल जाता है। प्रेमचंद कह देते हैं—"बड़ी लड़की सुमन सुन्दर, चंचल और अभिमानिनी थी। छोटी लड़की शांता भोली, गंभीर, सुशीला थी। यदि बाजार से दोनों बहनों के लिए एक ही प्रकार की साड़ियाँ आतीं तो सुमन मुँह फुला लेती थी। शांता को जो कुछ मिल जाता उसी में प्रसन्न रहती।"

इसी प्रकार पद्मसिंह के बारे में प्रेमचंद जी प्रारम्भ में ही कह देते हैं—"यद्यपि वे स्वयं आचरणवान मनुष्य थे तथापि अपने सिद्धांतों पर स्थिर रहने की उनमें सामर्थ्य न थी।" इसी निर्बलता पर उनके सारे व्यक्तित्व का ढाँचा खड़ा किया गया है।

परोक्ष शैली—पात्रों की रूपरेखा खींचने के बाद प्रेमचंद उन्हें रंगमंच पर उतार देते हैं और आप अदृश्य हो जाते हैं। वे पात्र अपने संवादों में एक दूसरे के प्रति जो भावनाएँ व्यक्त करते हैं, उनसे उनके स्वभावों का पता चलता है।

विट्ठलदास के सम्बन्ध में गजाधर कहता है—"वह जो बैंक घर के बाबू हैं, भला-सा नाम है विट्ठलदास.........उनकी बातें सुनकर मुझे भ्रम हो गया, मैं उन्हें भला आदमी समझता था। आदि।"

मदनसिंह के बारे में पद्मसिंह की राय देखिए—"भैया मुझे वार्निश वाले जूते पहनाकर आप नंगे पाँव रहते थे। मैं रेशमी कपड़े पहनता था, वे फटे कुर्ते पर ही दिन काटते थे आदि।"

पद्मसिंह के विषय में सुमन कहती है—'शर्माजी दया और धर्म के सागर हैं। इस जीवन में उनसे उऋण नहीं हो सकती।'

और सुभद्रा के शब्दों में सुमन का चरित्र सुनिये—"नहीं दीदी, वह अब वैसी नहीं है। वह बड़े नेम-धर्म से रहती है।"

पात्रों का स्वभाव इस प्रकार निर्दिष्ट कर देने के बाद प्रेमचन्द उन्हें परिस्थितियों के बीच संघर्ष करते हुए दिखाते हैं। उस समय उनके कार्य-कलाप द्वारा भी, हमें उनके उसी स्वभाव का परिचय मिलता है। पद्मसिंह का जीवन पढ़ते समय उनके प्रत्येक कार्य से हमें यह पता लग जाता है कि वे किसी सिद्धांत पर डटकर नहीं चल सकते। सुमन की चंचलता और विलासप्रियता का पता उसके व्यवहारों से स्पष्ट चलता है। विट्ठलदास की स्पष्टवादिता और निर्भयता उनके प्रत्येक कार्य में झलकती है।

प्रत्यक्ष और परोक्ष, दोनों ढंग से प्रेमचन्द अपने पात्रों के चरित्र पर प्रकाश डालते हैं और उनके चरित्र का विकास धीरे-धीरे होता है। यही इस शैली की विशेषता है।

चरित्रचित्रण में मानवस्वभाव का ज्ञान—"जहाँ न जाय रवि तहाँ जाय कवि" की कहावत प्रेमचन्द जी के बारे में सत्य है। सेवासदन में पात्रों के हार्दिक भावों को खोलकर रख दिया गया है। किस स्थिति में मनुष्य के मन में क्या भाव उठ सकता है

इसका दिग्दर्शन प्रेमचन्द ने बड़ी अच्छी तरह किया है। आदर्शवादी बुरा काम नहीं करता, यदि करे भी तो दंड भुगतने में असीम साहस का परिचय देता है। कृष्णचंद्र ने जीवन भर घूस नहीं लिया, एक बार लिया तो उसके खुल जाने पर वे वीरता के साथ अपराध स्वीकार करते हैं—"जी हाँ, मैं यही कहना चाहता हूँ कि मैंने अपराध किया है और उसका कठोर से कठोर दंड मुझे दिया जाय। मेरा मुँह काला करके मुझे सारे कस्बे में घुमाया जाय।" आदि।

एक पिता की यह हार्दिक कामना होती है कि उसका पुत्र अज्ञानवर्ती हो उसकी आज्ञा का उल्लंघन पुत्र का अक्षम्य अपराध है। मदनसिंह की इच्छा के विरुद्ध सदन जब शांता से विवाह कर लेता है तो वह उससे रुष्ट हो जाते हैं। पहले क्रोध, फिर क्रोध के बदले विराग और फिर विराग का स्थान दुख ले लेता है। जब सदन की कोई बुराई करता, "तो कुछ अनमने हो जाते। कहते—"भाई, अब क्यों कोसते हो ?.......अपने चार पैसे कमाता है, पड़ा है, पड़ा रहने दो।"

प्रेमचंद ने मानव-स्वभाव के ज्ञान का परिचय ऐसी स्थितियों में दिया है जो बड़ी व्यंजनात्मक हैं। पति-पत्नी के हृदय पर एकाधिकार चाहता है। यदि पत्नी किसी दूसरे पुरुष की प्रशंसा करे तो पति का हृदय जल उठता है। प्रेमचंद इस तथ्य को स्पष्ट नहीं लिख देते पर कथोपकथन से यही तथ्य प्रकट होता है। सुमन और गजाधर की बातचीत देखिए—

गजाधर ने पूछा—यह गाड़ी किसकी थी ?

सुमन— यहीं के कोई वकील की है। बेनीबाग में उनकी स्त्री से भेंट हुई। जिद करके गाड़ी पर बिठा लिया।

गजा०—तो क्या तुम वकील के साथ बैठी थी।

सुमन—कैसी बातें करते हो ?

× × × ×

सुमन—दोनों सज्जनता के अवतार हैं।

गजा०—अच्छा, चल के चूल्हा जलाओ, बहुत बखान हो चुका।

× × × ×

सुमन—गोरे-गोरे लम्बे आदमी हैं। ऐनक लगाते हैं।

× × × ×

गजा०—मैं उनका जमा-खर्च थोड़े ही लिखता हूँ। आते जाते कभी देख लेता हूँ। आदमी अच्छे हैं।

रेखांकित स्थलों पर, पति के हृदय का क्षोभ स्पष्ट झलकता है।

चंचल स्त्रियों की प्रवृत्ति का नमूना देखिए—

"सुमन कोई भी काम करती हो, पर उन्हें चिक की आड़ से एक झलक दिखा देती थी। उसके चंचल हृदय को इस ताक-झाँक में असीम आनंद प्राप्त होता था। किसी कुवासना से नहीं, केवल अपनी यौवन-छटा दिखाने के लिए, केवल दूसरों के हृदय पर विजय पाने के लिए, यह खेल खेलती थी।"

पात्रों और परिस्थिति का सम्बन्ध—

परिस्थिति का मानव-जीवन पर बहुत प्रभाव पड़ता है। कुछ लोगों का कहना है कि परिस्थिति प्रधान होती है वह जैसा चाहे मनुष्य को बना दे। किन्तु कुछ लोगों का मत है कि मनुष्य कोई निर्जीव पदार्थ नहीं, जिसे ठोक, पीट या घिस कर जैसा चाहे बना लिया जाय। उसमें इच्छा-शक्ति होती है और वह स्वयं परिस्थितियों को बदल लेने में समर्थ होता है। वास्तव में दोनों दृष्टिकोण एकांगी हैं। कुछ ऐसी परिस्थितियाँ होती हैं जिन्हें

मनुष्य बदलने में असमर्थ होता है, उसे अपने को उनके अनुरूप बनाना पड़ता है। अनेक परिस्थितियाँ ऐसी भी हैं, जिन्हें मनुष्य प्रयत्नों द्वारा बदल भी सकता है। मनुष्य का आत्मबल और परिस्थिति, दोनों की क्रिया और प्रतिक्रिया के बीच जीवन का विकास होता है। सेवासदन के पात्रों के चरित्र का विकास इसी मनोवैज्ञानिक तथ्य के अनुरूप हुआ है।

दरोगा कृष्णचंद्र आदर्शवादी हैं। जीवन भर उन्होंने घूस नहीं ली; किन्तु सामाजिक परिस्थितियाँ उन्हें अपने आदर्श को त्याग के लिए मजबूर कर देती हैं। संसार की वास्तविकता के आगे उच्चादर्श नतमस्तक हो जाता है। फिर भी यहाँ परिस्थिति की प्रधानता इसलिए है कि कृष्णचंद्र में दूरदर्शिता और दृढ़ इच्चाशक्ति की कमी थी। उन्होंने धन-संचय न करके उसे फूँक दिया और वे वास्तविकता का सामना न कर सके। उनकी निर्बलता के कारण परिस्थिति की विजय हुई।

सुमन के भ्रष्ट होने का कारण भी परिस्थितियाँ ही हैं। निर्धनता के सामने कोमल भावों का ठिकाना नहीं लगता। पति से प्रेम न होने का कारण उसकी निर्धनता थी। फिर उसकी पास-पड़ोसिन भी अच्छे चरित्र की न थीं, घर के सामने भोली बाई रहती थी। परिस्थितियों के वेग को सुमन नहीं सँभाल पाती और वे उसको नष्ट कर देती हैं। यदि मनुष्य दृढ़तापूर्वक परिस्थिति से संघर्ष करता रहे, तो उसमें बल आ जाता है। सुमन की आत्मा अब भी भ्रष्ट न हुई थी। वह ऊपर उठने का प्रयास करती रही। सुमन का शेष जीवन परिस्थितियों को विजय प्राप्त करने में बीता।

सदन गाँव का रहनेवाला युवक है। उसको सीमित क्षेत्र में रहना पड़ा था, इसलिए उसको जीवन का कोई अनुभव न

हुआ। परिणाम यह होता है कि परिस्थिति बदलते ही, जब वह शहर में आता है; तो उसे शहर की हवा लग जाती है, फिर व्याख्यानों को सुनने के बाद वह आत्म-सुधार की ओर प्रवृत्त होता है, और अंत में उसकी इच्छाशक्ति इतनी बलवती हो जाती है कि वह समाज के विरोध में शांता का विवाह करके सबको अपनी शक्ति का परिचय देता है।

प्रयत्नों द्वारा परिस्थिति को किस प्रकार बदला जा सकता है, इसका सबसे अच्छा उदाहरण है सेवा-सदन की स्थापना। वेश्याएँ जो समाज से बहिष्कृत हैं, और जिनके सुधार का कार्य अत्यंत कठिन माना जाता है, अन्त में सुधर जाती है। स्वामी गजानंद, पद्मसिंह और बा० विट्ठलदास के अनवरत प्रयत्न से उल्टी गंगा बहाने में असमर्थ हो जाते हैं।

पद्मसिंह

सेवासदन में प्रमुख पात्र पद्मसिंह हैं, कारण कथानक की प्रगति के प्रत्येक पग पर पद्मसिंह की आवश्यकता पाठक को अनुभव होती है। गजाधर और सुमन—पति और पत्नी—की कलह का परिणाम उसी समय होता है जब पद्मसिंह के यहाँ नाच होता है। सुमन के निकाले जाने पर पद्मसिंह के यहाँ आश्रय लेने पर कथा का प्रवाह तभी दूसरी ओर मुड़ता है जब वे भी सुमन को निकाल देते हैं। सुमन वेश्यापन अपना कर हिंदू-समाज का उपहास करती है, उसी समय पद्मसिंह विट्ठलदास को ३०) प्रतिमास सहायता का वचन देखकर उपन्यास की कथा का तीसरा दौर आरम्भ करते हैं, और अन्त में 'सेवासदन' की स्थापना में मुख्य भाग लेते हुए, वेश्या-समस्या का वे एक व्यावहारिक हल ढूँढ़ निकालते हैं। उपन्यास भर में उन्हीं का बोलबाला है और वे ही 'सेवा-सदन' के मुख्य पात्र हैं।

पद्मसिंह नयी रोशनी के व्यक्ति हैं। वकालत करके वे समाज में प्रतिष्ठित व्यक्ति की तरह जीवन व्यतीत करते हैं। अच्छी आमदनी है, घर पर नौकर हैं, घोड़ा-गाड़ी है युवती पत्नी है। उनके पास यौवन है, धन है और शिक्षा है। सब प्रकार से उनका जीवन सुखी है। वे उस युग के पढ़े-लिखे व्यक्तियों के प्रतिनिधि हैं, जो उच्चशिक्षा प्राप्त करके भारतीय सामाजिक आंदोलन में पूरी दिलचस्पी रखते हैं। सुधारवादियों में विशेषकर बा० विट्ठलदास से उनकी मित्रता से उनकी मित्रता है। पद्मसिंह उस वर्ग के व्यक्ति हैं जो उस समय अपनी नामवरी के लिए म्यूनिसिपैलिटी में प्रतिनिधि बन जाने में रुपया खुल कर खर्च करते हैं, उनमें आचरण है और समाज में उनका सम्मान है; किन्तु उनमें एक सच्चे सुधार-वादी की दृढ़ता का अभाव है—'यद्यपि वे स्वयं आचरणवान मनुष्य थे, तथापि अपने सिद्धांतों पर स्थिर रहने की उनमें सामर्थ्य न थी। कुछ तो मुरौवत

से, कुछ अपने सरल स्वभाव से कुछ मित्रों की व्यंग्योक्ति के भय से, वे अपने पक्ष पर अड़ न सकते थे।

पद्मसिंह की यह कमजोरी उनके चरित्र की सबसे मुख्य विशेषता है और वास्तव में यही उनके व्यक्तित्व का मुख्य आकर्षण भी है। वे सुधारों के पक्षपाती हैं, मगर नक्कू बनना उन्हें पसंद नहीं है बाबू विट्ठलदास के साथ रहने के कारण वे वेश्या-प्रथा के कट्टर विरोधी हैं, परन्तु चुनाव जीतने पर जब उनके मित्र 'भोली बाई' के नाच पर जोर देते हैं तो वे सहमत हो जाते हैं। इसका उन्हें मूल्य बहुत मँहगा देना पड़ता है क्योंकि बाबू विट्ठलदास उनसे बिगड़ जाते हैं और सुमन जब उनके घर आश्रय लेती है, तो उनके यही मित्र, उस समस्या को दूसरा ही रंग दे देते हैं। पद्मसिंह की बुरी तरह बदनामी हो जाती है।

उनके चरित्र की यह निर्बलता कई स्थानों पर देखने को मिलती है। उनकी इसी निर्बलता ने सुमन को वेश्या बना डाला। शांता और सुमन के विवाह में गड़बड़ होने पर पद्मसिंह अपने बड़े भाई के भय से उचित कदम नहीं उठा पाते, केवल समझा कर रह जाते हैं। अन्य स्थल पर 'शांता' जब उन्हें 'धर्म-पिता' सम्बोधित करके पत्र लिखती है, तो उनका कर्तव्य उन्हें धिक्कारता है, वे कोई कदम अपने आप नहीं उठा पाते, बा० विट्ठलदास की सहायता और परामर्श उन्हें साहस दिलाता है, वे शांता को ले आते हैं परन्तु भाई के डर से अपने घर नहीं रखते। सदन जब साहसपूर्वक उसे अपनाना भी चाहता है, तो 'हाँ' नहीं कर पाते। उसमें दृढ़ता का अभाव देखने में अच्छा नहीं लगता परन्तु वास्तव में इस कमजोरी ने ही उनके व्यक्तित्व में जान डाल दी है।

मनुष्य यदि सिद्धांतवादी है, साथ ही उसमें यदि स्थिरता और दृढ़ता है, उसकी मनःस्थिति विचित्र हो जाती है—उसका समय चिंता में ही बीतता है, क्योंकि वह अपना कर्तव्य पूरा नहीं कर पाता; पश्चात्ताप और ग्लानि उसके स्वभाव का अंग बन जाती है। पद्मसिंह शर्मा के स्वभाव की दूसरी विशेषता है, यही आत्मग्लानि और दुःख। जब वे अपना कर्तव्य पूरा नहीं कर पाते तो मन ही मन बड़े दुखी होते हैं। सुमन को घर से निकाल देने के बाद उन्हें बड़ा दुख होता है और उसके पतन का कारण वे अपने को ही समझने लगते हैं। वे सुमन का सामना करने में हिचकते हैं। जब मुंशी अबुलवफा उनको बग्घी पर बिठा कर बलपूर्वक सुमन के घर ले जाना चाहते हैं तो वे उस पर से कूद पड़ते हैं। पार्क में सुमन का सामना होने पर वे भागते हैं। 'सुमन' की समस्या आग की तरह उनके हृदय में जला करती है—"वे इस अपराध से दबे जाते थे। विचार

तीव्र होकर मूर्तिमान हो जाता है। कहीं दूर से उनके कान में आवाज आयी, वह जलसा न होता, तो आज मैं अपने झोपड़े में मग्न होती। इतने में हवा चली, पत्तियाँ हिलने लगीं, मानो वृक्ष अपने काले, भयंकर सिरों को हिला-हिलाकर कहते थे सुमन की दुर्गति तुमने ही की है।"

पद्मसिंह में सुधार की लगन थी। जिस काम को वे करते थे, सच्चे दिल से करते थे—"शर्मा जी शिथिल प्रकृति के मनुष्य थे। उन्हें कर्तव्य-क्षेत्र में लाने के लिए किसी प्रबल उत्तेजना की आवश्यकता थी..........वे सोते नहीं थे, केवल आलस्य के कारण पड़े थे।" बिट्ठलदास की पुकार पर वे 'वेश्या-सुधार' जी-जान से योग देने के लिए तैयार हो जाते हैं। प्रतिष्ठित व्यक्तियों में वे ही केवल ऐसे व्यक्ति थे जो सुमन के लिए ३०) प्रतिमास देने को तैयार होते हैं। सुमन के शब्दों में "शर्मा जी दया और धर्म के सागर हैं।" पद्मसिंह वेश्याओं की समस्या के महत्व को समझ कर एक आंदोलन-सा छेड़ देते हैं। वेश्याओं को शहर से अलग बसाने की योजना को एक प्रस्ताव के रूप में म्यूनिसिपैलिटी में लाना चाहते हैं इसका समर्थन, बहुमत द्वारा कराने के लिए, वे हिन्दू और मुसलमान सभी सदस्यों के दरवाजों की खाक छानते हैं, सभाएँ करते हैं और वक्तृताएँ देते हैं। उनका यह परिश्रम उनकी अनन्य लगन का मुख्य प्रमाण है।

पद्मसिंह उदार विचारों के व्यक्ति हैं। समाज में प्रचलित कुरीतियों का वे खुल कर विरोध करते हैं। विवाह के अवसर पर जो फिजूलखर्ची होती है, उसके स्थान पर वे गरीबों को कम्बल बाँटने या जनता के हित के लिए कुएँ बनाने में धन का व्यय करने की सलाह मदनसिंह को देते हैं। दूसरे मौके पर जब बरात गाँव में पहुँच जाती है और पता चलता कि वधू की बहन वेश्या है तो मदनसिंह बिगड़ जाते हैं, परन्तु पद्मसिंह को बेचारी

शांता का ध्यान है। उनके मन में बार-बार यह बात आती है कि शांता निर्दोष है। शांता उन्हें जब पत्र लिखती है, तो उनकी दया उमड़ पड़ती है "हाय ! उस अबला पर क्या बीतती होगी.......उन्हें उसमें अपने प्रति श्रद्धा का एक स्रोत-सा उमड़ता हुआ मालूम हुआ। इसने उनकी न्यायप्रियता को उत्तेजित कर दिया। "धर्म पिता" शब्द ने उन्हें वशीभूत कर लिया। उसने उनके हृदय में वात्सल्य के तार का स्वर कंपित कर दिया।"

पद्मसिंह में सेवा का सच्चा भाव था। वेश्या-समाज की उन्होंने सच्चे हृदय से सेवा की। "पद्मसिंह ने झिझक और संकोच को त्याग कर कर्मक्षेत्र में पैर रक्खा। पद्मसिंह जो सुमन के सामने से भाग खड़े हुए थे, अब दिन-दोपहर दालमंडी के कोठों पर बैठे दिखायी देने लगे.......उनकी आत्मा अब बलवान हो गयी थी।" उन्हीं के सेवाभाव का परिणाम था कि सेवा-सदन की स्थापना हो सकी। इस सेवा-कार्य के लिए उन्होंने वकालत छोड़ दी। वे म्यूनिसिपैलिटी के प्रधान कर्मचारी बनकर जनता की अकथनीय सेवा करते हैं।

यह हुआ पद्मसिंह का एक रूप जिसमें विवेक प्रधान है; साथ ही उनका एक दूसरा रूप भी है—वह है भावमय। उनका अपनी पत्नी सुभद्रा से अपूर्व प्रेम था। उनके भावमय लोक का वही एक मात्र सहारा थी। उनके परिवारिक सुखमय जीवन से कोई भी ईर्ष्या कर सकता है। सुभद्रा का वे आदर करते थे, उसकी सलाह मानते थे और उसके कहने पर चलते थे। वास्तव में उन्होंने सुभद्रा को उतना ही अधिकार दिया था, जितना पति पत्नी को अवश्य देता है। 'सुमत के निकालने पर जब सुभद्रा उन्हें डाँटती है, तो वे चुप हो जाते हैं। 'सदन' की पढ़ाई और उसके शौक पूरे करने में शर्मा जी जब घर खर्च में कटौती करते हैं, तो सुभद्रा को अच्छा नहीं लगता। वह उन्हें व्यंग्य और

तानों का शिकार बनाती है। शर्मा जी वास्तविकता को समझ कर चुप रह जाते हैं। पति-पत्नी में कभी-कभी झड़प और मनमुटाव हो जाता है, पर यह सब अस्थायी है। प्रणय का एक सुन्दर चित्र देखिए—'सुभद्रा को अपने प्रतिवाद पर खेद हुआ। उसने पान बनकर शर्मा जी को दिया। यह मानों संधि-पत्र था। शर्मा जी ने पान ले लिया, संधि स्वीकृत हो गयी।"

शर्मा जी का सुभद्रा पर सच्चा अनुराग है। अनुराग की कसौटी है—वियोग या उसकी संभावना। सुभद्रा विवाह के अवसर पर गाँव जाने वाली है, शर्मा जो उदास हो जाते हैं—'सुभद्रा यह सूचना पाकर बहुत प्रसन्न हुई। सोचने लगी, महीने चहल-पहल रहेगी, गाना बजाना होगा, चैन से दिन कटेंगे.......शर्माजी उदास हो गए, मन में कहा—इसे अपने आनन्द के आगे मेरा कुछ भी ध्यान नहीं।

वे सुभद्रा से मिलने के लिए बार-बार आते-जाते हैं, पर सुभद्रा तैयारी में व्यस्त है। चलने का समय आ गया। "सुभद्रा की आँखों में आँसू भर आए। चलते-चलते शर्मा जी की यह रुखाई अखर गयी। शर्मा जी निष्ठुरता पर पछताये। सुभद्रा के आँसूँ पोंछ, गले से लगाया और लाकर गाड़ी पर बिठा दिया।"

पद्मसिंह का भ्रातृप्रेम अभूतपूर्व है। अपने बड़े भाई के प्रति उनके मन में सच्चा आदर और कृतज्ञता का भाव है। मदनसिंह ने अनेक कष्ट सह कर, इन्हें पढ़ाया-लिखाया था। उन्हें वे दिन याद हैं—"सदन मेरे भाई का लड़का है जो अपने सिर पर आटे दाल की गठरी लाद कर स्कूल दाखिल कराने आए थे। मुझे वे दिन भूले नहीं हैं। उनके उस प्रेम का स्मरण करता हूँ तो जी चाहता है कि उनके चरणों पर गिरकर घंटों रोऊँ।"

भाई के प्रति यह प्रेम ही, उन्हें सदन के लिए प्रत्येक त्याग करने को विवश करता है। उसके लिए वे सारे कष्ट सह कर

घोड़ा ले देते हैं, कंगन चुराने पर भी वे उस पर अविश्वास नहीं कर सकते। "कंगन की क्या हस्ती है, मेरा तो यह शरीर ही उसी का पाला है। अगर वह मेरी जान माँगे तो मैं खुशी से दे दूँ। मेरा सब कुछ उसका है।"

पद्मसिंह अपने बड़े भाई के इतने भक्त हैं कि उनके आगे वे अपना मुँह नहीं खोल सकते। विवाह के अवसर पर वेश्या-नृत्य का समर्थन करते हुए मदनसिंह के विरुद्ध वे केवल दबी जबान से ही जो कुछ कह सकते हैं, कहते हैं। इसी प्रकार जब मदनसिंह बरात लौटने का आदेश देते हैं, तो वे खुल कर विरोध नहीं कर पाते। साथ ही जब बड़ा भाई उन्हें धक्का देकर गिरा देता है, तो वे चुप हो जाते हैं। उनके मन में जरा भी क्रोध नहीं आता। शांता उनको पत्र लिखकर बुलाती है। बिट्ठलदास उन्हें उत्साह दिलाते हैं, परन्तु बेचारे पद्मसिंह में इतना साहस नहीं कि वे आगे कदम बढ़ा सकें। वे स्पष्ट कहते हैं—

"मुझमें इतनी सामर्थ्य नहीं। भैय्या को मैं अप्रसन्न करने का साहस नहीं कर सकता। भैया सुनेंगे तो मुझे मार ही डालेंगे। जनवासे में उन्होंने जो धक्का लगाया था। वह अभी तक मुझे याद है।"

शर्मा जी के चरित्र में कोई अलौकिकता नहीं, कोई ऐसी विशेषता नहीं, जो उन्हें देवत्व या पशुत्व की ओर ले जाय, फिर भी उनमें आकर्षण है। कारण स्पष्ट है—उनके चरित्र में निर्बलता और साहस का ऐसा सुन्दर मिश्रण है कि पद्मसिंह मूर्त रूप में हमारे सामने खड़े दिखायी देते हैं।

मदनसिंह

मदनसिंह में हमें एक भातीय सद्गृहस्थ का चित्र देखने को मिलता है। 'भारतीय' से हमारा मतलब यह है कि भारत का

एक साधारण व्यक्ति शांतिपूर्वक रहता है। वैज्ञानिक युग की लहरों से उसका कोई सम्बन्ध नहीं, वह हजारों वर्षों से चली आती हुई धार्मिक और सामाजिक परम्पराओं का अंधानुवर्ती होता है। मदनसिंह ऐसे ही व्यक्ति हैं।

मदनसिंह पद्मसिंह के बड़े भाई हैं। अपने लिए उन्होंने कुछ नहीं किया, किन्तु छोटे भाई पद्मसिंह को लिखा-पढ़ा कर वकील बना दिया। उनके उपकारों के बोझ से छोटा भाई इतना दबता है कि जन्म भर अपना सर ऊँचा नहीं कर सकता। उनका गाँव और गाँव का समाज—यही उनकी दुनिया है। जीवन का कार्य-क्रम यही है कि घर का काम-काज लेन-देन तथा जमींदारी देखना। वे अपने परिवार के पुरखा—बड़े बूढ़े हैं।

मदनसिंह का ज्ञान उसी प्रकार सीमित है, जैसा शहर की चहल-पहल से दूर गाँव के रहने वालों का होता है। भारतीय परम्पराओं और रूढ़ियों के वे पक्षपाती हैं। लड़के का ब्याह है, बरात सज-धज के साथ जायगी, चारों ओर नाम होगा; परन्तु पद्मसिंह ने डेरे का (वेश्या) प्रबन्ध नहीं किया :—

"मदनसिंह चौंक पड़े, जैसे किसी ने चुटकी काट ली हो; बोले, धन्य हो महराज। तुमने तो डोंगा ही डुबा दिया। फिर तुमने जनवासे का क्या सामान किया है..........दूर-दूर से उनके संबंधी आये होंगे, दूर-दूर के गाँव के लोग बरात में आयँगे वह अपने मन में क्या कहेंगे ? राम राम !"

यदि कहा जाय कि उनमें समझदारी नहीं, तर्क नहीं समझते, तो उचित न होगा। वे सब कुछ समझते हैं पर प्रचलित रिवाज से उन्हें विवेकहीन मोह है, उसे छोड़कर वे नक्कू बनना नहीं चाहते—"मैं भी इस प्रथा को निंद्य समझता हूँ, लेकिन नक्कू

नहीं बनना चाहता, जब सब लोग छोड़ दें, तो मैं भी छोड़ दूँगा, मुझको ऐसी क्या पड़ी है कि सबके आगे चलूँ।"

रिवाजों के समर्थन में वे यहाँ तक कह डालते हैं—"उन्होंने (पूर्वजों) जो प्रथाएँ चलायी हैं उन सबमें कोई न कोई बात छिपी रहती है, चाहे आजकल वह हमारी समझ में न आवे।" वे आधुनिकता की बुराई बड़े तर्कपूर्ण ढंग से करते हैं पर वे बातें उनके अनुभव की नहीं, सुनी-सुनायी हैं।

मदनसिंह को अपने उच्च कुल और गौरव पर अभिमान है। उस पर किसी प्रकार आँच आए यह उन्हें तनिक भी पसन्द नहीं। बरात की महफिल लगी थी, ज्यों ही उन्हें मालूम हुआ कि वधू की बहन वेश्या है, मानों आसमान से गिर पड़ते हैं। उनका सारा विवेक लुप्त हो गया, उमानाथ को उन्होंने आड़े हाथ लिया और बारात लौटाने का आदेश दे दिया। पद्म सिंह के समझाने पर वे बहुत क्रोधित हो उठते हैं। और धक्का देकर गिरा देते हैं। सदन जब शांता से विवाह कर लेता है और मदनसिंह पद्मसिंह, से पूरा हाल सुनते हैं तो आग बबूला हो जाते हैं। उनका कथन सुनने लायक है—

"मैं उस छोकरे का सर काट लूँगा, वह अपने को समझता क्या है।" "वह आग में कूदता है, कूदने दो। ऐसा दूध पीता नादान बच्चा नहीं है। यह सब उसकी जिद है। बच्चू को भीख मँगाकर न छोड़ूँ तो कहना।....मुँह धो रक्खें, यह कोई मौरूसी जायदाद नहीं है, यह मेरी अपनी कमाई है। सब की सब कृष्णार्पण कर दूँगा। एक फूटी कौड़ी तो मिलेगी नहीं।"

दूसरी ओर इस मर्यादा प्रेमी मदनसिंह के निष्ठुर शरीर में पिता का हृदय धड़कता दिखायी देता है। सदन ने शांता से विवाह करके उनके आत्माभिमान पर ठेस पहुँचाई थी। उन्होंने

पुत्र से नाता तोड़ लिया किन्तु वे अपने मन्तव्य पर दृढ़ न रह सके। पुत्र-प्रेम भी कोई चीज होती है, उसने मदनसिंह को मजबूर कर दिया। "उन्होंने सदन की चर्चा करनी छोड़ दी। यदि कोई उसकी बुराई करता तो कुछ अनमने से हो जाते; कहते—भाई, अब क्यों उसे कोसते हो ?" यह खबर मिलने पर कि उमानाथ की सहायता से सदन फल-फूल रहा है, वे कहते हैं—"सदन ने जो कुछ किया होगा अपनी कमाई से किया होगा। वह लाख बुरा हो, निकम्मा नहीं है।"

पुत्र-वियोग ने धीरे-धीरे सदन की बुराइयों पर परदा डाल दिया। मदनसिंह के विरागयुक्त कथन में उनका वात्सल्य उमड़ा पड़ा है। देखिए—

"देखो, कैसा निर्दयी है, मुझसे रूठने चला है, मानों मैं यह जगह, जमीन, माल-असबाब सब अपने माथे पर लाद कर ले जाऊँगा।.......पापी कहीं का! मुझसे घमंड करता है, कुढ़-कुढ़कर मर जाऊँगा तो बैठा मेरे नाम को रोयेगा।"

मदनसिंह के मान और 'पुत्र-प्रेम' में घोर द्वन्द्व होता है। प्रेम उन्हें रोकता है, परन्तु पोते के जन्म-समाचार ने उनके मान को पराजित कर दिया, वे स्वयं सदन के घर जा पहुँचते हैं। पोते को पाकर उनकी दुनिया ही बदल जाती है। विराग की भावना दूर होकर, उनके हृदय में पूर्ण अधिकार जमा लेती है—

"पं० मदनसिंह पहले तीर्थयात्रा पर उधार खाए बैठे थे। जान पड़ता था, सदन के घर आते ही वह एक दिन भी न ठहरेंगे, सीधे बद्रीनाथ पहुँच कर दम लेंगे, पर जब से सदन आ गया है, उन्होंने भूल कर भी तीर्थयात्रा का नाम नहीं लिया। पोते को गोद में लिए असामियों का हिसाब करते हैं, खेतों की निगरानी करते हैं। माया ने और भी जकड़ लिया है।"

सदन

पुरुष पात्रों में सदन ही ऐसा है जिसका जीवन संघर्षमय दिखाया गया है और ऐसा होना उसकी युवावस्था के अनुरूप ही है। यह संघर्ष अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी इस दृष्टि से कि प्रति पग पर उसे लालसाओं, इच्छाओं और वासनाओं से लड़ना पड़ता है और बहिर्मुखी यों कि सुधारवादियों का वह असली सेनापति है जो समाज के विरुद्ध स्वयं लड़ता है और खुलकर मैदान में आता है।

सदन अपने माँ बाप का इकलौता पुत्र है बचपन सुख से बीता, दुलार ने उसे "क्रोधी, आलसी उद्‌दंड" बना दिया। माँ-बाप के अत्यधिक स्नेह का जो कुपरिणाम होता है, सदन उससे नहीं बच सका। वे उसे आँखों से दूर कहीं नहीं रखना चाहते थे, सदन की शिक्षा-दीक्षा अच्छी तरह न हो सकी। गाँव-गँवई के वातावरण में, जिसमें अविवेक और रूढ़िवादिता का प्राधान्य होता है, वह पलकर अंधविश्वास का शिकार बन गया। उसे भूत-प्रेतों पर विश्वास था। जब वह घर से चुराकर अपने चाचा पद्मसिंह के पास भागता है, तो रास्ते भर उसे भूत-प्रेतों का असीम भय बना रहता है। सदन में सोचने-समझने की शक्ति का उदय नहीं हुआ।

जनसाधारण प्रायः संयम का असली अर्थ नहीं समझते। यदि किसी को बढ़िया रुचिकर भोजन नहीं मिलता, तो वह यह समझने लगता है कि वह अपनी जबान पर काबू पा चुका है, परंतु उसका यह भ्रम तभी दूर होता है, जब उसके सामने रसपूरित व्यंजन की थाली आती है। सदन गाँव में रहकर सीधा-साधा जीवन बिताता था, न वहाँ अच्छे कपड़े पहनता था। इस दिखावटी संयम के प्रति घोर प्रतिक्रिया का अनुभव हम सदन के

जीवन में करते हैं, जब वह शहर में जा पहुँचता है। सदन युवक था और यौवन के उद्दाम वेग को सँभाल सकना अत्यन्त कठिन है। कविवर विहारी ने ठीक ही कहा है—

इक भीजैं, चहलैं परैं, बूड़ैं बहैं हजार।
कितै न अवगुन जग करै वय नय चढ़ती बार॥

यौवनकाल में प्रवृत्तियों का वेग बहुत बढ़ जाता है, फिर सदन के लिए कठिनाई यह थी कि उसे अभी तक गाँव में रहने के कारण, आकर्षणों का अनुभव न हुआ था :—

"वायु-सेना में जो एक प्रकार का दार्शनिक आनंद होता है उसका उसे ज्ञान..........उसका यौवनकाल था, जब बनाव-सिंगार का भूत सिर पर सवार रहता है। वह अत्यन्त रूपवान, सुगठित, बलिष्ट युवक था। ....शरीर बहुत सुडौल निकल आया था, छाती चौड़ी, गरदन तनी हुई, ऐसा जान पड़ता था, मानो देह में ईंगुर भरा हुआ है। उसके चेहरे पर वह गम्भीरता और कोमलता न थी, जो शिक्षा और ज्ञान से उत्पन्न होती है। उसके मुख से वीरता और उद्दडता झलकती थी। आँखें मतवाली, सतेज और चंचल थीं। वह बाग का कलमी पौधा नहीं, वन का सुदृढ़ वृक्ष था।"

ऐसा था सदन का व्यक्तित्व। वह रूप और श्री की अतुलित सम्पत्ति का स्वामी था; परन्तु था विवेकहीन। परिणाम स्वाभाविक था। वह वेश्या के जाल में फँस जाता है—"सदन में वह विवेक तो था नहीं जो सदाचरण की रक्षा करता है। उसमें वह आत्मसम्मान भी नहीं था, जो आँखों को ऊपर नहीं उठने देता।" उधर पद्मसिंह जैसा अभिभावक उसे मिला—वे अपने भाई के प्रति असीम कृतज्ञता के विचार से सदन को रोकते न थे! सदन को घोड़ा भी खरीद दिया गया, वह पतन के मार्ग में तेजी से दौड़ने लगा। यही नहीं, वह एक "बिगड़े हुए नौजवान"

के रूप में हमारे सामने आता है, सुमन को प्रसन्न करने के लिए घर से रुपया माँगकर साड़ी खरीद देता है और चाची का कंगन चुराकर उपकार के रूप में सुमन को देता है।

सदन सुमन की ओर आकृष्ट हुआ और यह ठीक है कि युवावस्था की प्रेम-पिपासा ने उसे ऐसा करने के लिए बाध्य किया, परन्तु उसकी यह दशा उसकी अवस्था के अनुकूल थी। उसका यह कृत्य, अबुलवफा, सेठ चिम्मनलाल या पंडित दीनानाथ के वेश्या-प्रेम से कहीं उच्चकोटि का था। वे वासना के गुलाम और अभ्यस्त विषयी हैं, उसका अंतःकरण शुद्ध है:—"प्रेम-लालसा के इतने प्रबल होते हुए भी वह अपनी कुवासनाओं को दबाता था! उसका अक्खड़पन लुप्त हो गया था। वह वही करना चाहता था जो सुमन को पसंद हो। वह कामातुरता जो कलुषित प्रेम में व्याप्त होती है, सच्चे अनुराग के अधीन होकर सहृदयता में परिवर्तन हो गयी थी।"

वासना के महत्व को न पहचानना, सत्य की उपेक्षा करना है। वह शरीर की भूख है, उसके मिटने से शरीर स्वस्थ होता है; पर 'भूख' जब 'लत' बन जाती है, तभी अग्राह्य और अनुचित होती है। सदन में सच्ची भूख थी, उसकी आदत चाट की न थी, अर्थात् वह इधर-उधर रूप का व्यापार करता नहीं फिरता था। साड़ी और कंगन उसने प्रेमोपहार रूप में दिए। इस विषय में सदन का समर्थन करने का उद्देश्य यह नहीं है कि सदन का प्रेम उज्ज्वल और आध्यात्मिक था। उसका प्रेम एक साधारण व्यक्ति का प्रेम था, किंतु उसमें पूर्ण पशुत्व न था।

सदन में सरलता है, भोलापन है और है सच्चाई। उसने कंगन चुराया, सुमन से अपनी स्थिति बढ़ा-चढ़ाकर बतायी, परन्तु उसने यह सब परिस्थितिवश किया। असलियत खुलने पर वह लज्जित होता है, सुमन से मिलने की प्रबल उत्कंठा उसे

दालमंडी की ओर घसीटती है, पर वह केवल झूठ बोलने के अपराध से उसका सामना करने में हिचकता है "संध्या समय सदन को सुमन के पास जाने का साहस न हुआ। चोर दगाबाज़ बनकर उसके पास कैसे जाय ? उसका चित्त खिन्न था। घर पर बैठना बुरा मालूम होता था। उसने यह सब सहा, पर सुमन के पास न जा सका।"

सदन ने प्रवृत्ति की प्रधानता है, आरम्भ में तो वह उन्हीं के वश में है। विवेक और तर्क करना वह जानता नहीं। शताब्दियों की चली हुई पराम्पराओं के बीच गाँव में पलकर और रूढ़िवादी पिता की गोद में खेल कर सदन उच्च और उदार भावों से दूर रहा। सुमन से उसे प्रेम था, इतना साहस न था कि वह खुले आम उसके पास जा सके। शांता, सुमन वेश्या की बहन थी, इसलिए वह उसे पत्नी रूप में कैसे वरण करता ? बारात में जो दुर्घटना हुई, उसे वह ठीक ही समझता था, उसकी समझ में पद्मसिंह की उदारता अनुचित थी। इस प्रकार के व्यक्तित्व निर्माण होने का कारण प्रेमचन्द जी से सुनिए—"विचारों की स्वतंत्रता, विद्या, संगठित और अनुभव पर निर्भर होती है। सदन इन सभी गुणों से रहित था.......आत्मपतन को वह दार्शनिक की उदार दृष्टि से नहीं, शुष्क योगी की दृष्टि से देखता था।.......वह सुमन बाई पर जान देता था, लेकिन उसके लौकिक शास्त्र में यह प्रेम उतना अक्षम्य न था जितना सुमन की परछाईं का उसके घर आ जाना। उसने सुमन के यहाँ पान तक न खाया था। वह अपनी कुल मर्यादा और सामाजिक प्रथा को अपनी आत्मा से कहीं बढ़ कर महत्व की वस्तु समझता था।"

सदन के विचार अस्थिर हैं। उसके दो कारण हैं, एक तो यौवनकाल और दूसरा उसके विचारों का अपरिपक्व होना। इन

दोषों के मुकाबले में सबसे बड़ा गुण है उसमें ग्राह्यशक्ति का होना। अब तक वह ऐसे वातावरण में पला था कि उसमें तर्क-वितर्क की शक्ति ही नहीं आयी थी, किन्तु ज्यों ही वह सुधारवादियों की पुकार सुनता है, उसके मन पर उनके व्याख्यानों का गहरा प्रभाव पड़ता है। उसका दालमंडी जाना छूट जाता है यद्यपि वह अपनी प्रेम-लालसा को दबा नहीं पाता। परिस्थिति का बदलना काफी था, पत्थर के स्पर्श से लोहा सोना बन गया व्याख्यानों को सुनते-सुनते, "वह मन में स्वीकार करने लगा कि हम लोगों ने शांता के साथ अन्याय किया है।" चरित्र-शुद्धि के महत्व को वह समझने लगता है, अध्ययन में उसकी रुचि बढ़ जाती है। यहाँ तक कि वह साधारण लेखक बन बैठता है। इस उत्थान का कारण उसकी ग्राह्यशक्ति है।

सदन के जीवन में महत्वपूर्ण परिवर्तन आता है। उसे कर्तव्य का बोध होता है। वह शांता के प्रति अपने दायित्व को समझने लगता है किन्तु उसे फिर भी समाज का ध्यान रहता है। सुमन जब उसे शांता को ग्रहण करने के लिए बाध्य करती है, तो वह टाल-मटोल करता है—"उस समय मैं तो लज्जा से भी डरता था। इतना तो आप भी मानेंगी कि संसार में रहकर संसार की चाल चलनी पड़ती है।" सदन खुलकर शांता का हाथ नहीं पकड़ पाता। इस घटना से सदन के हृदय पर गहरी चोट लगती है। बचपन से जगे हुए रूढ़िग्रस्त संस्कारों के अंधकार को फाड़कर विवेक का सूर्य उदित होता है। उनके मन में यह बात आती है कि उसकी निर्बलता कारण है उसकी अकर्मण्यता और बेकारी। वह साहसपूर्वक कोई काम इसलिए नहीं कर पाता कि वह अपने चाचा और पिता के ऊपर निर्भर रहता है।

आगे हम सदन को घोर परिश्रमी, स्वावलम्बी और आत्म-

निर्भर देखते हैं। उसमें अनेक गुण थे। "वह ईमानदार था, सत्यवक्ता था, सरल था, जो कहता मुँह पर, लगी लिपटी रखना नहीं जानता था पर वह नहीं जानता था कि इन गुणों का आत्मिक महत्व चाहे जो कुछ हो, संसार की दृष्टि में विद्या की उनमें पूरी नहीं होती।" यह विद्या थी आत्मनिर्भरता और स्वावलम्बन की। वह नदी में नाव चलाने का व्यापार करने लगता है। यहाँ वह आजकल के फैशनपरस्त नवयुवकों के लिए आदर्शरूप में हमारे सामने आता है। काम महान है, चाहे छोटा हो या बड़ा। "वह जमींदार का पुत्र था और एक वकील का भतीजा। उस उच्च पद से उतर कर मल्लाह का काम को करने में उसे स्वभावतः लज्जा आती थी।" परन्तु वह उसी काम को करता है। सदन दिन-रात परिश्रम करता है, मल्लाह उससे दबते हैं। व्यापारिक सफलता की कुञ्जी तो परिश्रम ही है। सदन को इसी के बल पर सहायता मिली। उसने भगतराम से माल ढोने का ठेका लिया और धीरे-धीरे चूने की चक्की खड़ी कर ली। उसके पास जमीन हो गयी और रहने के लिए झोपड़ी भी।

सदन एक व्यावहारिक व्यक्ति है। उसमें जहाँ यौवन के अनुरूप कोमल कल्पनाएँ हैं, वहाँ एक संसार की कठोर वास्तविकता से लोहा लेने की शक्ति भी रखता है। "उसकी कल्पना ने तट पर एक सुन्दर हरी-भरी लातओं से सजा हुआ झोपड़ा बनाया और शांता की मनोहारिणी मूर्ति आकर उसमें बैठी। झोपड़ा प्रकाशमान हो गया आदि।" वह दिन में स्वप्न देखता है, दूसरी ओर उसको एक यह चित्र है—"उस दिन वह घड़ी रात रहे उठकर नदी किनारे चला झींगुर को जगाकर नाव खुलवा दी आदि।" अपना सफलता के बल पर ही वह पिता, चाचा, चाची, सबके मन में घर बना बैठा और शांता को अपनाकर समाज के आगे

एक आदर्श स्थापित कर सका। उसके सुखमय जीवन से कोई भी युवक ईर्ष्या कर सकता है।

कहते हैं जब पेड़ फलता है, तो वह धरती की ओर झुकता है। सदन भी विनयी और नम्र स्वभाव का हो जाता है। उसके मन में अपने चाचा पद्मसिंह के प्रति उतना ही आदर है जितना पहले था।

स्वावलंबन से सदन में निर्भीकता आ जाती है। वह शांता को अपनाने के लिए तैयार हो जाता है। वह स्वीकार करता—"मैंने कई बार इरादा किया कि चलकर अपना अपराध क्षमा कराऊँ, लेकिन यही विचार उठता कि किस बूते पर जाऊँ। घरवालों से सहायता की कोई आशा न थी और मुझे तो तुम जानती हो कि मैं सदा कोतल घोड़ा बना रहा............अंत को मैंने गंगा माता की शरण ली और अब मुझे किसी के सहारे या मदद की आवश्यकता नहीं है।" आत्मनिर्भर हो जाने से उसमें सत्य और कर्तव्य-पालन तथा दृढ़ता जैसे गुण उत्पन्न हो जाते हैं। वह शांता के अपनाने का निश्चय पद्मसिंह पर प्रकट करता है और वे टालमटूल करते हैं तो वह कितनी निर्भीकता और गम्भीरता से कहता है-"ऐसा तो मैं तब करूँगा जब मुझे छिपाना हो। मैं पाप करने नहीं जा रहा हूँ, जो उसे छिपाऊँ। यह मेरे जीवन का परम कर्तव्य है, उसे गुप्त रखने की आवश्यकता नहीं है। अब तक विवाह के जो संस्कार पूरे नहीं हुए हैं, वह कल गंगा के किनारे पूरे किए जायँगे। यदि आदि आप वहाँ आने की कृपा करेंगे तो मैं अपना सौभाग्य समझूँगा। नहीं तो ईश्वर के दरबार में गवाहों के बिना भी प्रतिज्ञा हो जाती है।"

उक्त गुणों की दृष्टि से सदन का चरित्र अवश्य अनुकरणीय है परन्तु विचारों की स्थिरता और उत्कृष्टता के आदर पर उसका चरित्र आदर्श नहीं। जो सुमन उसे कभी जान से भी ज्यादा से

भी ज्यादा-ज्यादा प्यारी थी, जिसकी प्रसन्नता के लिए वह आसमान के तारे तोड़ लाना आसान समझता था, वही अन्त में उसके लिए घृणा की वस्तु बन जाती है, और वह सुमन से किसी तरह गला छुड़ाना चाहता है—उस सुमन से, जिसने दुर्दिन में सदन और शांता की भरसक सेवा की। अब शांता की बात लीजिए। उससे सदन जी-जान से प्रेम करने लगा था—यहाँ तक कि उसे अपने पर घमंड हो गया था। दूसरी स्त्री की ओर वह आँख उठाकर देखना भी पाप समझता था; परन्तु उसके इस आदर्श की जड़ में उसकी वासना की तृप्ति थी। जब शांता गर्भिणी हुई और उसका वह रंग-रूप नष्ट हो गया तो उसके पास बैठना भी उसे खलता था। युवती मल्लाहिनों से कुचेष्टाएँ करने लगा और एक बार फिर वह दालमण्डी की खाक छानने लगता है।

सदन के चरित्र में यौवन की समस्या का पूर्ण विश्लेषण है। चित्त की प्रधानता, प्रवृत्ति की प्रधानता, ओज, बल, साहस आदि यौवन के गुण और दुर्गुण हैं। ये सभी सदन के चरित्र में मिलते हैं। बचपन और यौवन-काल में परिस्थिति के भावों का विशेष असर होता है। प्रौढ़ावस्था में मनुष्य उतना नहीं बदलता जितना युवावस्था में। ये परिवर्तन जो परिस्थिति के अनुरूप होते हैं, सदन में बड़ी अच्छी तरह चित्रित हुए हैं। बचपन का आलसी सदन, विकसित होकर परिश्रमी और बिगड़ा हुआ नवयुवक सद्गृहस्थ बन बैठता है यह सब परिवर्तित परिस्थितियों का परिणाम था।

बिट्ठलदास

पं० पद्मसिंह शर्मा के सच्चे अभिन्न-मित्र बाबू बिट्ठलदास हैं। वे सुधारवादी व्यक्ति हैं और हैं सिद्धान्त के पक्के।

सिद्धान्त के आगे मित्रता को वे तुच्छ समझते हैं। भोली बाई के नृत्य से ही दोनों मित्रों के हृदयों में गाँठ पड़ जाती है, क्योंकि शर्मा जी ने जानबूझ कर वेश्या का नाच कराया और विट्ठलदास इसे सहन नहीं कर सकते थे। यही नहीं, विट्ठलदास को क्रोध भी आता है और वे पद्मसिंह को बदनाम करने में चूकते नहीं। सुमन को आश्रय देते ही उन्हें पद्मसिंह के विरुद्ध आग भड़काने का मौका मिल जाता है। उनका क्रोध उचित होते हुए भी विवेक-शून्य है—'यह देश का सेवक और सामाजिक अत्याचारों का शत्रु, उदारता और अनुदारता का विलक्षण संयोग था। उसके हृदय में सारे जगत के प्रति सहानुभूति थी, किन्तु अपने वादी के प्रति लेशमात्र भी सहानुभूति न थी। वैमनस्य में अंधविश्वास की चेष्टा होती है। जबसे पद्मसिंह ने मुजरे का प्रस्ताव किया था, विट्ठलदास को द्वेष हो गया था।"

बिट्ठलदास के हिताहित-ज्ञानशून्य प्रचार का परिणाम यह हुआ कि सुमन वेश्या बन गयी। उन्होंने इस कुपरिणाम का अनुमान भी न किया था। पद्मसिंह के पत्र ने ताड़ना का काम किया बिट्ठलदास को सच्चा दुख हुआ। "पत्र पढ़ा तो एक थप्पड़-सा लगा। उस पत्र में कितना व्यंग्य था, इसकी ओर उन्होंने कुछ ध्यान नहीं दिया। अपने परम मित्र को भ्रम में पड़कर बदनाम किया, उसका भी दुख नहीं हुआ। वह बीती हुई बातों पर पछताना न जानते थे।" यदि भूल से उनसे पाप हुआ तो वे उसका प्रायश्चित करना भी जानते थे। उन्होंने सुमन का उद्धार किया और उसके लिए उन्होंने मान, मर्यादा और प्रतिष्ठा सभी की बाजी लगा दी। उन्हीं के उत्साह दिलाने से पद्मसिंह सुधार-क्षेत्र में उतर आते हैं और सुमन के उद्धार के लिए स्वयं बिटठलदास ने घर-घर पर जाकर चन्दा इकटठा किया।

विट्ठलदास का जीवन सार्वजनिक है और उसी के अनुरूप

उसमें साहस है। सर्वसाधारण में सुधारों को अपनाने की हिम्मत नहीं होती। विधवाश्रम में खुले आम 'सुमन' को लाकर रखना खतरे से खाली न था। उससे बिट्ठलदास की बदनामी, और आश्रम के टूट जाने का भय था; परन्तु विट्ठलदास ने निर्भय होकर इन खतरों को मोल लिया। उनके सामने भी वैसे ही प्रलोभन थे जैसे इस प्रकार की संस्थाओं के संरक्षकों के सामने होते हैं और जिनके कारण इन आश्रमों में कितनी ही गंदी घटनाएँ घटित होती रहती हैं। विट्ठलदास निःस्वार्थ सेवक थे। उन्होंने अबुलवफा, सेठ चिम्मनलाल आदि की स्वार्थपरता को पहचाना और उनकी दिखाऊ सहानुभूति पर ठोकर मार दी। ऐसे अवसरों पर वे कूटनीति से भी काम लेते थे—"यह सेवाधर्म का पुतला अपने निज के व्यवहार में झूठ और चालबाजी से कोसों भागता था, लेकिन जातीय कार्यों में अवसर पड़ने पर उसकी सहायता लेने में जरा भी संकोच न करता था।"

विट्ठलदास स्पष्ट वक्ता हैं, वे चापलूसी से दूर भागते हैं। पद्मसिंह अपनी निर्बलता के कारण अपना कर्तव्य-पालन करने में जब भी हिचकते हैं, तो विट्ठलदास उनको सीधी और सच्ची सलाह बताते हैं। 'सेवासदन' में सुधारकों का जमघट है—कुँवर साहब, सेठ साहब, डा० साहब सभी पाँच सवारों में हैं, पर किसी को मान प्यारा है, किसी को नाम और किसी को पेट। डाक्टर साहब कहते हैं—मुझे इस प्रस्ताव से पूरी सहानुभूति है, लेकिन आप जानते हैं, मैं गवर्नमेंट का नामजद किया हुआ मेम्बर हूँ। जब तक यह न मालूम हो जाय कि गवर्नमेंट इस विषय को पसंद करती है या नहीं, मैं इस विषय पर कोई राय नहीं दे सकता।" विट्ठलदास तीव्र स्वर से कहते हैं—"जब मेम्बर होने से आपके विचार-स्वातंत्र्य में बाधा पड़ती है, तो आपको इस्तीफा दे देना चाहिए।" यह उनकी स्पष्टवादिता का नमूना

है। 'सेवासदन' के अन्त में पद्मसिंह चाहते हैं कि बिट्ठलदास भी म्यूनिसिपैलिटी में कोई पद स्वीकार कर लें पर वे इसलिए इस जाल में नहीं फँसते कि पद की मर्यादा और लोभ उनकी स्वार्थरहित सेवा पर पानी फेर देगा। बिट्ठलदास आदर्श समाज-सेवी हैं। उनके सम्बन्ध में श्री प्रेमचन्द का मत सुनिए—"बाबू बिट्ठलदास शहर की सार्वजनिक संस्थाओं के प्राण थे। उनकी सहायता के बिना कोई कार्य सिद्ध न होता था। वह पुरुषार्थ का पुतला इस भारी बोझ को प्रसन्न चित्त से उठता था। दब जाता था। किन्तु हिम्मत न हारता था। भोजन करने का अवकाश न मिलता था, घर पर बैठना नसीब न होता, स्त्री उनके स्नेह-रहित व्यवहार की शिकायत किया करती, बिट्ठलदास जाति सेवा की धुन में अपने सुख और स्वार्थ को भूल गये थे। कहीं अनाथालय के लिए चन्दा जमा करते फिरते हैं, कहीं दीन विद्यार्थियों की छात्रवृत्त का प्रबन्ध करने में दत्तचित्त हैं। जब जाति पर कोई संकट आ पड़ता तो उनका देश-प्रेम उमड़ता था। आजकल के समय सिर पर आटे का गट्टर लादे गाँव-गाँव में घूमते थे। आदि।"

बिट्ठलदास में उच्च शिक्षा न थी, विद्वत्ता न थी और उच्चकोटि की दार्शनिकता न थी। था केवल देशानुराग—इस समाज-सेवक में "तनिक भी अभिमान न था। उन्होंने उच्चशिक्षा नहीं पायी थी। वाक्शक्ति भी साधारण थी। उनके विचार में बहुधा प्रौढ़ता तथा दूरदर्शिता का अभाव होता था। वह विशेष नीतिकुशल, चतुर या बुद्धिमान न थे। पर उनमें देशानुराग का ऐसा गुण था जो उन्हें सारे नगर में सर्वमान्य बनाए हुए था।"

कृष्णचन्द्र

दारोगा कृष्णचन्द्र के चरित्र में हमें दो विशेष बातें देखने को मिलती हैं—एक तो है आदर्शवाद और यथार्थवाद की टक्कर

जिसमें आदर्शवाद को झुकना पड़ता है और दूसरी है—मनोवैज्ञानिक तथ्य से पूर्ण एक व्यक्तित्व का विश्लेषण।

कृष्णचन्द पुलिस के आदर्श दारोगा हैं। किसी समय वे 'रसिक', उदार और बड़े सज्जन मनुष्य थे। मातहतों के साथ वे भाई-चारे का व्यवहार करते थे।' उन्हें थानेदारी करते पचीस वर्ष हो गए थे, लेकिन उन्होंने अपनी नियत को कभी बिगड़ने न दिया था। उन्होंने आदर्श को निभाया, परन्तु वे वास्तविकता से कोसों दूर थे, अफसरों की, मातहतों की, सभी की नजरों में कोई सम्मान न था, अंधेर नगरी में ईमानदार की पूछ भी कैसे होती, फिर भी उन्हें सम्मान और भौतिक सुख का अभाव कभी नहीं खला। कारण, संसार की कठोरता से उन्हें सामना करने का सीधा अवसर पड़ा ही न था। जब ऐसा मौका आया तब उनकी आँखें खुलीं। वह मौका था—लड़कियों के विवाह का। उनका वेतन इतना न था कि खा-पीकर और ठाट से रहकर दस-बीस हजार रुपया जमा करते। घूस लेना वे जानते न थे, फिर दहेज के लिए धन कहाँ से जुटाते। दहेज प्रथा का विरोध मुँह से काई कितना ही करे पर वास्तविकता यह है कि वर के माता-पिता किसी न किसी रूप में दहेज चाहते ही हैं। कृष्णचन्द्र दहेज के अभाव में सुमन और शांता का बेड़ा पार लगाने में असमर्थ थे। वास्तविकता की एक ठोकर ने उनके आदर्श के महल को ढहाकर मिट्टी में मिला दिया। वही कृष्णचन्द्र निश्चय करते हैं :—"धर्म का मजा चख लिया, सुमति का हाल भी देख चुका अब लोगों के खूब गले दबाऊँगा, खूब रिश्वतें लूँगा······आज से मैं वही करूँगा जो सब लोग करते हैं।"

अध:पतन भी एक समस्या है। जो कभी गिरा नहीं, उसका गिरना भी सरल नहीं होता। दारोगा कृष्णचन्द्र को परिस्थितियों ने पराजित तो कर दिया पर उनकी अन्तरात्मा जाग्रत थी। उसकी

हत्या करने में उन्हें भीषण अन्तर्द्वन्द्व का सामना करना पड़ा। महन्त जी ने खून किया, बचने के लिए तीन हजार रुपये का प्रलोभन दारोगा साहब के सामने रक्खा। कृष्णचन्द्र ने उसे इस तर्क पर स्वीकार किया—"तुमसे जब तक निभ सका तुमने निबाहा। भोग-विलास के पीछे अधर्म नहीं किया, लेकिन जब देश, काल, प्रथा और बन्धुओं का लोभ तुम्हें कुमार्ग की ओर ले जा रहा है, तो तुम्हारा क्या दोष? तुम्हारी आत्मा अब भी पवित्र है। तुम ईश्वर के सामने अब भी निरपराध हो!"

अंतरात्मा को धोखा देना आसान नहीं। घूस लिया तो परन्तु कृष्णचन्द्र ने उसी निर्भीकता से अपना दोष पुलिस अफसर के सामने स्वीकार कर लिया।

एक आदर्शवादी की तरह कृष्णचन्द्र व्यावहारिकता से कोसों दूर हैं। कारण, उनमें अनुभव की कमी है। घूस उन्होंने कभी नहीं ली; फिर वे उसके हथकन्डे कैसे समझते? घूस दूसरों को खिलाकर खायी जाती है, यह तत्व उन्हें मालूम न था। न तो उन्होंने महंत जी के मुख्तार को कमीशन दिया और न अपने मातहतों को हिस्सा बाँटा। पोल खुलना अनिवार्य था। हथकड़ी पड़ गयी और जेल का रास्ता देखना पड़ा। बस, इसी वास्तविकता की अग्नि में आदर्शवादी कृष्णचन्द्र जल मरा।

जेल के अकल्याणकारी प्रभाव से कृष्णचन्द्र बिलकुल बदल गये। आकाश से उतर कर सीधे पाताल पहुँच गये। देखिए— "उनमें गंभीरता की जगह एक उद्दंडता आ गयी थी और संकोच नाम को भी न रहा।" "कृष्णचन्द्र की बातें ऐसी हास्यपूर्ण और उनकी चितवनें ऐसी कुचेष्टापूर्ण होती थीं कि स्त्रियाँ लज्जा से मुँह छिपा लेतीं.........वास्तव में कृष्णचन्द्र काम-संताप से जले जाते थे।" उनकी इस बात में एक मनोवैज्ञानिक कारण छिपा

है। एक तो जेल का दूषित और कुत्सित वातावरण मनुष्य को यों ही पशु बना देता है, फिर कृष्णचन्द्र के हृदय पर एक भीषण आघात लगा था। सारे जीवन भर का आदर्श कुछ क्षणों में धूल में मिल गया, इस धक्के ने उनके मन में एक विकार पैदा कर दिया। उनका इस प्रकार का आचरण किसी भी माने में स्वाभाविक नहीं कहा जा सकता। यह उनके मानसिक उन्माद का लक्षण है—"वे रात को बार-बार दीर्घ-निश्वास लेकर 'हाय ! हाय !' कहते सुनाई देते थे। आधी रात को चारों ओर नीरवता छायी रहती थी। वे चारपायी पर करवटें बदल-बदल कर यह गीत गाया करते ते—अगिया लगी सुन्दर बन जरि गयो।"

सचमुच वे अपने होश-हवाश में न थे—उनके नंदन-वन में आग लग चुकी थी—उनका गीत व्यंजनात्मक है। उनमें मनुष्यता का अभाव नहीं हुआ था। होश में आने पर वे मनुष्य ही की भाँति कृतज्ञ और दिखायी विजयी देते हैं।

कृष्णचन्द्र के जीवन का अन्तिम दृश्य बहुत करुण है। उनके जीवन में दुखों का ताँता बँध गया। घाव भरा नहीं कि दूसरा फिर लगा और उसे वे सँभाल न सके। शांता के विवाह की गड़बड़, बारात का लौटना, सुमन का वेश्या होना सुनकर वे अपने होश-हवास खो बैठे, उचित-अनुचित का ज्ञान उन्हें न रहा; उनका जीवन मृत्यु से बढ़कर था—'जिस दिन से बारात लौट गई, उसी दिन से कृष्णचन्द्र फिर घर से बाहर नहीं निकले। अब उन्हें किसी को मुँह दिखाते लज्जा आती थी। दुश्चरित्रा सुमन ने उन्हें संसार की दृष्टि में चाहे कम गिराया हो, पर वे अपनी दृष्टि में कहीं के न रहे।"

क्रोध, लज्जा और पश्चात्ताप उनके जीवन के अंग बन गये। उनका रहा-सहा ज्ञान भी नष्ट हो गया। पहले वे सुमन की हत्या

करने पर तुल गये पर अंत में स्वयं नदी में डूबकर आत्महत्या कर ली। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से दारोगा कृष्णचन्द्र का चरित्र-चित्रण अद्वितीय हुआ है।

उमानाथ

कृष्णचन्द्र के साले उमानाथ दुनिया के उन मनुष्यों में हैं जो लोकव्यवहार को ही अपने जीवन का आदर्श समझते हैं। ऐसे लोग भीतर से कुछ और बाहर से कुछ और दिखाई देते हैं। इसी से कृष्णचन्द्र की उनसे बनती न थी। वे उमानाथ को धूर्त, पाखंडी समझते थे। उनका लंबा तिलक दारोगा साहब को धोखे की टट्टी ही समझ पड़ता है।

उमानाथ में एक गुण है। वह है अपनी बहिन के प्रति प्रेम। कितने ही भाई ऐसे होते हैं जो मुसीबत पड़ने पर अपनी बहिन के पास भी नहीं फटकते। परन्तु उमानाथ विपत्ति में दौड़ पड़ते हैं और अपनी बहिन को घर ले आते हैं। वे स्त्री के ताने सुनते हैं, पर बहिन को कोई दुख नहीं पहुँचाते। वे स्वार्थी थे, और संसार में स्वार्थ के सिवा होता भी क्या है, मगर उन्होंने सुमन के विवाह के लिए काफी दौड़-धूप की, शांता के लिए सुयोग्य वर ढ़ूँढ़ भी निकाला। अपनी भानजियों के लिए उनके हृदय में सच्चा प्रेम था। इस सम्बन्ध में उन्होंने स्वार्थविहीन-कर्तव्य का पालन किया था।

उमानाथ का दूसरा गुण है उनकी सफल व्यावहारिकता। उसी के बल पर वे सुखमय जीवन बिताते थे और गाँव भर में सिरमौर थे। उनके सुखमय जीवन का नमूना देखिए—"उनकी आकाशी-वृत्ति थी। उनकी भैंस और गाएँ न थीं, लेकिन घर में घी-दूध की नदी बहती थी, खेती-बारी न करते थे, लेकिन घर में अनाज की खत्तियाँ भरी रहती थीं। गाँव में कहीं मछली मरे,

कहीं बकरा कटे, कहीं आम टूटे, कहीं भोज हो, उमानाथ का हिस्सा बिना माँगे आप ही पहुँच जाता था।......................... समस्त गाँव में उनकी सम्मति के बिना कोई काम नहीं होता था।"

उनके इस प्रभाव का कारण लोगों के लिए एक उलझन थी। "उनके स्वभाव में क्या जादू था, नहीं मालूम। कोई कहता, यह उनका इकबाल है, कोई कहता था, इन्हें महावीर का इष्ट है। लेकिन हमारे विचार में यह उनके मानव-स्वभाव के ज्ञान का फल था। वे जानते थे कहाँ झुकना और कहाँ तनना चाहिए।" इसी का परिणाम था कि थानेदार, तहसीलदार, कानूनगो और कुर्क-अमीन सभी की उन पर कृपा रहती थी।

उमानाथ में मनुष्योचित और भी गुण हैं। उन्हें अपने सम्बन्धियों से जितनी सहानुभूति है, उतनी साधारण आदमियों में कम होती है। जेल से छूटने के बाद दारोगा कृष्णचन्द्र उनके घर पर ही आश्रय पाते हैं। कृष्णचन्द्र उनको कितनी ही खरी-खोटी सुनाते हैं; परन्तु फिर भी वे चुप रहते हैं। उनमें दया भी है और करुणा भी। कृष्णचन्द्र की आत्महत्या के बाद शांता अकेली हो जाती है। उमानाथ की पत्नी जाह्नवी मनमाने अत्याचार उस पर करती है, परन्तु वह सहती जाती है। उमानाथ की आँखों से कुछ छिपा नहीं। उन्हें दुःख होता है। वे सोचते हैं— "हम केवल पेट की रोटियों के लिए ही इस अनाथिनी को इतना कष्ट दे रहे हैं। ईश्वर के यहाँ क्या जवाब देंगे?"

उमानाथ का विशेष अवगुण स्थार्थपरता है। वे मतलब के पीछे सब-कुछ करने के लिए तैयार रहते हैं। शांता के विवाह में विघ्न पड़ने से उनकी काफी बदनामी हुई, उनके लिए उन्हें उतना दुःख नहीं होता। वे मदनसिंह पर मुकदमा दायर करना चाहते

हैं, पर उसमें प्रतिकार की भावना प्रधान नहीं है, वरन् स्वार्थ का प्राधान्य है।" वकीलों ने उन्हें विश्वास दिला दिया था कि तुम्हारी विजय अवश्य होगी। पाँच-हजार रुपये मिलने से मेरा कल्याण होगा, यह कल्याण-कामना उमानाथ को आनंदोन्मत्त कर देती थी। इस कल्पना ने उनकी शुभकामनाओं को जाग्रत कर दिया था। नया घर बनाने के मंसूबे होने लगे थे। उस घर का चित्र हृदय-पट पर खिंच गया था। उसके लिए उपयुक्त स्थान की बातचीत शुरू हो गयी थी।" आत्म-सम्मान का उन्हें कोई ख्याल नहीं। उनके ये विचार बड़े ही घृणास्पद हैं।

उनकी एक दूसरी विशेषता भी उतनी ही हास्यास्पद है। गाँव का शेर उमानाथ, घर के भीतर बिल्ली बना रहता है। उनकी पत्नी जाह्नवी उचित-अनुचित कुछ भी करे, उमानाथ अपना मुँह खोलने का साहस नहीं कर सकते थे। उमानाथ का अपनी बहन गंगाजली से बहुत प्रेम था पर जाह्नवी के अत्याचारों से उसे बचाने की उनमें सामर्थ्य नहीं। उसके बीमार पड़ने पर वे रो पड़ते हैं—"उन्हें अपनी दुर्बलता पर अत्यन्त ग्लानि हुई। गंगाजली के सिरहाने बैठकर रोते हुए बोले—बहन, यहाँ लाकर मैंने तुम्हें बड़ा कष्ट दिया। नहीं जानता था कि उसका यह परिणाम होगा। मैं आज किसी वैद्य को ले आता हूँ।" इतने में जाह्नवी आ गयी, बस उनकी सारी समवेदना काफूर हो गयी। उमानाथ का उत्साह शांत हो गया। वैद्य को बुलाने की हिम्मत न पड़ी।" उमानाथ के चरित्र का यह पहलू बड़ा मनोरंजक है।

गजाधर पांडे

गजाधर पांडे का जीवन असफल पति की शिक्षाप्रद कहानी है। निम्नवर्ग का युवक है, घर-बार नहीं, शहर में किराये पर रहने वाला। किसी "कारखाने में १५) का बाबू" था। एक

विवाह हो चुका था, पहली पत्नी मर चुकी थी। माँ-बाप भी न थे। अकेला व्यक्ति था किराये के मकान में रहता था। "मकान में दो कोठरियाँ थीं, और एक सायबान। दीवारों में चारों ओर से लोनी लगी हुई थी। बाहर से नालियों की दुर्गन्ध आती रहती थी। धूप और प्रकाश की गुजर नहीं।" इतना नरकमय उसका जीवन था। सचमुच बाबूगीरी करने वाले व्यक्ति का यह व्यंग्य-चित्र है। उस पर विचित्रता यह है कि शहर-निवासियों के इस घृणित-जीवन को दूर से देहाती-समाज बड़े चमकीले रूप में देखता है। उमानाथ इस जीवन की प्रशंसा का पुल बाँधते हुए कहते हैं—'शहर में कोई बुड्ढा तो होता ही नहीं। जवान लड़के होते हैं और बुड्ढे जवान; उनकी जवानी सदाबहार होती है। वही हँसी-दिल्लगी, वही तेल फुलेल का शौक। लोग जवान ही रहते हैं और जवान ही मर जाते हैं।" देहात के लोग क्या जानें कि शहर की संगमरमर की नालियों में कितना मैला बहता है।

अभाग्यवश गजाधर को चतुर गृहिणी न मिली। सुमन सुन्दरी थी, परन्तु गृहस्थी के चलाने में पटु न थी। नपी-तुली आय में कैसे चलता ! दूसरी ओर गजाधर भी जिन परिस्थितियों में पला, वे इतनी दूषित थीं कि गजाधर सफलापूर्वक निर्वाह न कर सकता था। अभाव में पलने वाला स्वभाव से लोभी होता है। गजाधर "स्वभाव से ही कृपण था। जलपान की जलेबियाँ उसे विष के समान लगती थीं ; दाल में घी देखकर उसके हृदय में शूल होने लगता। वह भोजन करता तो बटुली की ओर देखता कि कहीं अधिक तो नहीं बना है। दरवाजे पर दाल-चावल फेंका देखकर उसके शरीर में ज्वाला-सी लग जाती थी, पर सुमन की मोहनी सूरत ने उसे वशीभूत कर लिया था।"

इन परिस्थितियों और स्वभाव के अनुरूप गजाधर पति की

हैसियत से कहाँ तक सफल हुआ, इस विषय को अच्छी तरह समझे बिना उसके चरित्र को ठीक से हृदयंगम नहीं किया जा सकता। 'पति' के जीवन को हम दो पहलुओं में बाँट सकते हैं, एक तो वह जिसमें वह अपने कर्तव्य का पालन करता है, संसार की कठोरता का सामना करता है, परिश्रम करता है। दूसरा पहलू भावमय है, जिसमें पत्नी के विचारों को समझना, उसके भाव-लोक की गुत्थियों को सुलझाना और अपने प्रेम से नारी के हृदय पर विजय प्राप्त करना आदि बातें आती हैं। हमें इन आधारों पर गजाधर के चरित्र का अवलोकन करना है।

पति-जीवन के पहले पहलू को दृष्टि में रखकर जब हम विचार करते हैं, गजाधर का चरित्र उत्तम कोटि का जान पड़ता है। पत्नी को सुखी रखने के लिए, वह चौका-बरतन खुद कर डालता है, पानी भरता है। साथ ही "गजाधर इन दिनों बड़ी मेहनत करता। कारखाने से लौटते ही एक दूसरी दुकान पर हिसाब-किताब लिखने चला जाता था। वहाँ से आठ बजे रात को लौटता। इस काम के लिए उसे ५) और मिलते थे।" गजाधर के परिश्रम में कोई कसर नहीं थी। वह कठिनाइयाँ सहन करता था। यदि सुमन संतुष्ट न हो सकी, तो गजाधर का क्या दोष? "गजाधर ने सुमन को सुख से रखने के लिए अपने से जो कुछ हो सकता था सब करके देख लिया, पर अपनी स्त्री के लिए आकाश के तारे तोड़ लाना उसकी सामर्थ्य के बाहर था।"

अब गजाधर के पति जीवन के दूसरे पहलू को लीजिए जिसमें भावों का प्राधान्य है। स्त्रियों को रिझाने की कला उसे न मालूम थी। उसने कभी न सोचा कि स्त्री चाहती है कि पति उसकी प्रेम-पिपासा को शांत करे, भावुकता-प्रदर्शन द्वारा अपना प्रेम प्रकट करे। गजाधर इन तथ्यों को समझ नहीं सका जब कि दाम्पत्य-जीवन को सुखी बनाने में इनका महत्वपूर्ण

हाथ है। गजाधर और सुमन के बीच वह आत्मसमर्पण और प्रेमानुभूति हमें देखने को नहीं मिलती जो पद्मसिंह शर्मा और सुभद्रा के सम्बन्धों में दिखाई देती है। यह ठीक है कि गजाधर आर्थिक कठिनाइयों के कारण सुमन को अच्छे-अच्छे गहने नहीं बनवा सकता था, या कीमती साड़ियाँ नहीं ला सकता था, किंतु रमणी का हृदय भरने के लिए जिन मनोभावों की आवश्यकता होती है, उनमें रुपया नहीं लगता। गजाधर में इस भावुकता का अभाव था। वह पत्नी पर 'अधिकार' की भावना से रोब जमाना चाहता था। शासन के द्वारा सुमन पर राज्य करना चाहता था। यही कारण था कि वह सुमन के हृदय को न जीत सका। इस तथ्य का अनुभव उसने बाद में किया पर तीर तो हाथ से निकल चुका था—"तुम आदर के योग्य थीं, मैंने तुम्हारा निरादर किया..........स्त्री मैले-कुचैले, फटे-पुराने वस्त्र पहनकर, आभूषणविहीन होकर, आधे पेट सूखी रोटी खाकर, झोपड़े में रहकर, मेहनत मजदूरी कर, सब कष्टों को सहती हुई आनन्द से जीवन व्यतीत कर सकती है। केवल घर में आदर होना चाहिए, उसमें प्रेम होना चाहिए।"

गजाधर में समस्याओं को सुलझाने की योग्यता न थी। सुमन यदि भोली वेश्या से मेल-जोल बढ़ाने लगी, तो उसका कारण यह था कि वह अकेली थी और अकेलापन मनुष्य को असह्य है। यदि पड़ोस में कोई भली स्त्री होती तो सुमन उसके पास बैठती। अच्छी संगति के अभाव में भोली बाई के पास बैठना उसके लिए स्वाभाविक था, फिर सुमन भी मूर्ख थी, यह गजाधर न समझ सका। भोली के पास भले और बड़े व्यक्ति आते हैं, सुमन ने इसका उल्टा अर्थ लगाया। गजाधर पांडे भी समर्थन करते हैं—"अँग्रेजी शिक्षा ने लोगों को उदार बना दिया है। वेश्याओं का अब उतना तिरस्कार नहीं किया

जाता। फिर भोली बाई का शहर में बड़ा मान है।" परिस्थिति का असली पहलू वह सुमन के सामने न रख सके। परिणाम भीषण हुआ। इसी तरह गजाधर ने सुमन की पिछली परिस्थितियों पर कभी विचार नहीं किया। सुमन किस प्रकार के स्वच्छन्द और सुखमय वातावरण में पली थी, इसका उसे ध्यान भी न हुआ। उसने सारी परिस्थिति पर विवेकपूर्ण ढंग से काबू पाने की कोशिश नहीं की। सुमन के प्रति उसके मन में संदेह पैदा हो गया। वकील पद्मसिंह एक प्रतिष्ठित व्यक्ति थे, कोई उचक्के नहीं। सुमन का उनके घर जाना उतना बुरा न था। उनके वहाँ से लौटने पर गजाधर को अत्यधिक क्रोध ने वश में कर लिया और परिणाम को बिना समझे-बूझे उसने सुमन को निकाल दिया। उसने सारी परिस्थिति पर एक बार भी ठंडे दिल से नहीं विचार किया। सुमन जब अन्त में गजाधर से मिलती है, तो इसी बात की ओर इशारा करती है :—"अब क्या छिपाऊँ, तुम्हारे दारिद्रय और इससे अधिक तुम्हारे प्रेम-विहीन व्यवहार ने मुझमें असन्तोष का अंकुर जमा दिया और चारों ओर पाप-जीवन की मान-मर्यादा सुख का विलास देखकर इस अंकुर ने बढ़ते-बढ़ते भटकटैए के सदृश्य सारे हृदय को छा लिया। उस समय एक फफोले को फोड़ने के लिए जरा-सी ठेस भी बहुत थी। तुम्हारी नम्रता, तुम्हारा प्रेम, तुम्हारी सहानुभूति, तुम्हारी उदारता, उस फफोले पर फाहे का काम देती, पर तुमने उसे मसल दिया। मैं पीड़ा से व्याकुल-संज्ञाहीन हो गयी। तुम्हारे उस पाशविक, पैशाचिक व्यवहार का जब स्मरण होता है, तो हृदय में एक ज्वाला-सी दहकने लगती है।"

क्रोध, भ्रम और अविवेक का शिकार बनकर गजाधर ने सुमन को खो दिया! गजाधर का पति-जीवन समाप्त हो गया इन सब घटनाओं की भीषण प्रतिक्रिया होनी ही चाहिए थी।

उसके मन में एक घोर विराग ने घर कर लिया। गजाधर के जीवन में आने वाला नया परिवर्तन यह है—"उसके (सुमन) चले जाने के बाद दो चार दिन तक तो मुझ पर नशा बना रहा, पर जब नशा ठंडा हुआ तो मुझे वह घर काटने लगा। मैं फिर उस घर में नहीं गया। एक मंदिर में पुजारी बन गया।........रामायण आदि कथाएँ पढ़ा करता। कभी-कभी साधु महात्मा भी आ जाते। उनके पास सत्संग का सुअवसर मिल जाता। उनकी ज्ञान-मार्ग की बातें सुनकर मेरा अज्ञान कुछ-कुछ मिटने लगा।........ज्ञानियों के सत्संग से भक्ति ने वैराग्य का रूप धारण कर लिया। अब गाँव-गाँव घूमता हूँ और अपने से जहाँ तक हो सकता है दूसरों का कल्याण करता हूँ।"

स्वार्थरत गजाधर इस प्रकार एक परोपकारी साधु बन जाता है। पश्चात्ताप की आग में जलकर वह शुद्ध सोना बन गया। सुमन को उसने खो दिया, परन्तु उसने अपनी 'आत्मा' को पहचान लिया। गजाधर कायर न था, उसने कभी आत्महत्या की बात भी न सोची। अपनी भूलों से उसने अच्छा पाठ सीखा और भूलों ने उसे आत्मोत्थान की ओर प्रेरित किया। पतित-जीवन को भी उत्कृष्ट बनाया जा सकता है, इसका रहस्य गजाधर के मुँह से सुनिए—"मेरा अभिप्राय केवल यह है कि आत्मघात करके मैं संसार का कोई उपकार न कर सकता। इस कालिमा ने मुझे अपने जीवन को उज्ज्वल बनाने पर बाध्य किया है। सोई हुई आत्मा को जगाने के लिए हमारी भूलें एक प्रकार की दैनिक यंत्रणाएँ हैं, जो हमको सदा के लिए सतर्क कर देती हैं। शिक्षा, उपदेश, सत्संग, किसी से भी हमारे ऊपर उतना सुप्रभाव नहीं पड़ता जितना अपनी भूलों के परिणामों को देखकर........वही कायरता मेरे लिए शांति और सदुद्योग की एक अविरल धारा बन

गयी है। एक प्राणी का सर्वनाश करके आज मैं सैकड़ों अभागिनी कन्याओं का उद्धार करने के योग्य हुआ हूँ।

गजाधर ने साधु-जीवन बिताना प्रारम्भ किया, परन्तु वह उन अकर्मण्य साधुओं में न था जो समाज पर भार होते हैं, भिक्षावृत्ति द्वारा अपना पेट भरते हैं किन्तु समाज का कोई कल्याण नहीं करते; या ढोंग के द्वारा दूसरों को ठगते हैं। गजाधर में सेवा की सच्ची भावना पैदा हो गयी थी। उसने उसे देवत्व प्रदान कर दिया। वे छाया की भाँति प्रत्येक पात्र के साथ उसकी सहायता के लिए लगे रहते हैं। सदन जब वेश्या-गमन के कीचड़ में फँस जाता है, तो वह आकर उसे सदुपदेश देते हैं, उमानाथ शांता के लिए वर ढूँढ़ने में आर्थिक दीनता के कारण असमर्थ होकर दुखी होते हैं, तो वह उन्हें १०००) की सहायता का वचन देते हैं, कृष्णचंद्र जब आत्महत्या के लिए दौड़ते चले जाते हैं, तो वही उन्हें पकड़ लेते हैं, और डूबते समय बचाने का भरसक प्रयत्न करते हैं; सुमन आत्महत्या के लिए तैयार होती है, तो उसे भी समझाकर रोकते हैं। यह सब उनकी क्रियाशीलता के प्रमाण हैं।

सुमन को अधःपतन के मार्ग में ढकेलने का बहुत-कुछ दोष गजाधर को है परन्तु सुमन को फिर रचनात्मक कार्य में लगाने का श्रेय भी उसी को है। पद्मसिंह और बिट्ठलदास ने उसे वेश्या-जीवन से उबारा, परन्तु गजाधर ने उसे वह सच्ची प्रेरणा दी जिसने उसे रचनात्मक कार्य-क्रम में लगा दिया। गजाधर समझता है—"सुमन, यदि प्राण देने से पापी का प्रायश्चित हो जाता तो मैं अब तक कभी का प्राण दे चुका होता।"

सुमन—"कम से कम दुखों का तो अन्त हो जायगा।"

गजा०—"हाँ, तुम्हारे दुखों का अन्त हो जायगा, पर उनके

दुखों का अन्त न होगा जो तुम्हारे दुख से दुखी हो रहे हैं। तुम्हारे माता-पिता शरीर के बंधन से मुक्त हो चुके हैं, लेकिन उनकी आत्माएँ अपनी विदेहावस्था में तुम्हारे पास विचर रही हैं…… सोच लो, प्राणघात करके उनको दुख पहुँचाओगी या अपना पुनरुत्थान करके उन्हें सुख और शांति दोगी। पश्चात्ताप अंतिम चेतावनी है, जो हमें आत्म-सुधार के लिए ईश्वर की ओर से मिलती है।" "तुमसे उसका (शांता) जितना कल्याण हो सकता है उतना अन्य किसी से नहीं हो सकता। अब तक तुम अपने लिए जीती थीं; अब दूसरों के लिए जिओ।"

इन मर्मस्पर्शी उपदेशों ने सुमन को सेवा के क्षेत्र में ला खड़ा किया। पश्चात्ताप ने गजाधर के मन में सुमन के प्रति आध्यात्मिक प्रेम उत्पन्न कर दिया। वैराग्य और सेवा-व्रत धारण करने के कारण वह सुमन को लेकर फिर गृहस्थाश्रम में न प्रविष्ट हो सके, पर उसे सच्चा मार्ग दिखा दिया—वह था सेवा और परोपकार का मार्ग। 'सेवासदन' का सारा कार्य-भार सुमन ने उन्हीं की प्रेरणा से सँभाला। अपने इस आध्यात्मिक प्रेम के बल पर ही उन्होंने अपने जीवन की सबसे बड़ी हार को जीत के रूप में बदल दिया। "गजाधर ने उस पर विश्वास करके उसकी घृणा को जीत लिया था। उसमें प्रेम का संचार कर दिया था।"

"सेवा-सदन" की स्थापना में गजाधर का महत्वपूर्ण योग था। वास्तव में यह उसी की प्रेरणा का फल था कि वेश्याओं में इतनी अधिक जागृति उत्पन्न हुई। वे संन्यासी बन गये और वेश्याओं के घर जाकर उनके कुसंस्कारों को दूर करने की चेष्टा करने लगे और उसका यह परिणाम यह हुआ कि वेश्याओं ने 'सेवासदन' की योजना अपना ली। इस प्रकार वेश्या-समस्या का एक हल उन्होंने ढूँढ़ निकाला।

गजाधर का चरित्र शिक्षाप्रद है। नवयुवक-समाज उससे

बहुत-कुछ सीख सकता है, विशेष रूप से सद्यःविवाहित लोगों के लिए गजाधर के चरित्र में गृहस्थी की समस्या का सुन्दर हल मिलता है।

सुमन

सुमन का जीवन स्पष्ट रूप से दो भागों में बाँटा जा सकता है। पूर्वार्द्ध भाग में अविवेक, यौवन की उच्छृंखलता, नारीसुलभ चंचलता, हठ, रूप का गर्व और आडम्बर की प्रधानता है, और उत्तरार्द्ध भाग में संयम, सेवा, सहनशीलता और गंभीरता का प्राधान्य है। आश्चर्य की बात यह है कि पूर्व भाग में, जब सुमन गृहलक्ष्मी के रूप में हमारे सामने आती है, तो उसमें अवगुणों की मात्रा अधिक दिखाई देती है, जिनके कारण वह हमारी सहानुभूति खो बैठती है, किन्तु उत्तर भाग में गुण ही गुण निखर उठते हैं, जिनके कारण वह हमारे आदर और सम्मान की पात्री बन जाती है। इसकी तह में एक मनोवैज्ञानिक कारण है।

मनोवैज्ञानिकों का एक वर्ग कहता है कि मनुष्य के विकास में उसका सहज स्वभाव ही प्रधान है, परन्तु दूसरा दल परिस्थितियों का समर्थन करता है—उसका कहना है कि मनुष्य का विकास उसकी परिस्थितियों के अनुकूल होता है। वास्तव में ये दोनों दृष्टिकोण एकांगी हैं। मनुष्य के विकास में जन्मजात गुण और परिस्थितियाँ दोनों ही अपना-अपना काम करती हैं। सुमन के चारित्रिक विकास में वे दोनों प्रवृत्तियाँ अपनी-अपनी जगह विशेष परिणाम पैदा करती हैं।

सुमन का जो रूप हम उसके विवाहित होने पर देखते हैं, उसका बीज हमें उसका बचपन से ही मिलता है। प्रेमचंद जी सुमन के विषय में पहले ही कहते हैं—"बड़ी लड़की सुमन, सुन्दर चंचल और अभिमानिनी थी.......सुमन दूसरों से बढ़कर रहना

चाहती थी। यदि बाजार से दोनों बहनों के लिए एक ही प्रकार की साड़ियाँ आतीं तो सुमन मुँह फुला लेती थी।" सुमन के बचपन का यह स्वभाव यौवन-काल में अपने आधार पर विकसित होता है। वह अपने सौंदर्य पर अभिमान करती है, उसका तड़क-भड़क पर मोह है और पति के सामने हमेशा हठ करती है। सहज स्वभाव की यहाँ पर सबलता दिखायी देती है, परन्तु साथ ही यह भी मानना पड़ेगा कि उसके स्वभाव का इस गति से विकसित होना केवल इस कारण से है कि उसे परिस्थितियों से अब तक संघर्ष नहीं करना पड़ता। बचपन में पिता के घर आराम से पली, मामा ने रक्षा की और पति का आश्रय मिल गया, निष्ठुर परिस्थितियों का सामना हुआ ही नहीं, परन्तु पति के निकाल देने पर, जब संसार की कठोरता का उसे आभास हुआ तो सुमन का रूप ही बदल गया। शांता और गजाधर के साथ तथा "सेवासदन" की परिचारिका बन कर वह सहनशीला तथा सेविका बन गयी। गृहिणी सुमन और सेविका सुमन में जमीन-आसमान का अन्तर परिस्थितियों के कारण हो गया।

पत्नीरूप में सुमन भीषणरूप से असफल हुई। पत्नी में प्रेम और कर्तव्य का अद्भुत समन्वय होना चाहिए। एक गुण की कमी भी असफलता का कारण बन जाती है, फिर सुमन में तो दोनों की कमी थी। पति के हृदय में प्रेम जाग्रत करने में सौंदर्य का प्रमुख हाथ है। इस दृष्टिकोण से प्रकृति ने उसे पूर्ण वरदान दिया था। वह अद्वितीय सुन्दरी और लावण्यमयी थी; परन्तु सुमन इससे लाभ न उठा सकी। उसे अपने रूप पर गर्व था। यह गर्व इतना भयानक होता है कि स्त्रियों को ले डूबता है। सुमन हमेशा सोचती है—"क्या उसके बनाव-सिंगार पर गहने-कपड़े पर लोग इतने रीझे हुए हैं? मैं भी यदि वैसा बनाव करूँ, वैसे गहने कपड़े पहनूँ तो मेरा रंग-रूप और न निखर जायगा? मेरा

यौवन और न निखर जायगा ?" यौवन का गर्व चंचलता उत्पन्न करता है। सुमन भी इस निर्बलता का शिकार बन गयी। "सुमन कोई भी काम करती हो, पर उन्हें (युवकों को) चिक की आड़ से एक झलक दिखा देती थी। उसके चंचल हृदय को इस ताक-झाँक में असीम आनन्द प्राप्त होता था। किसी कुवासना से नहीं, केवल अपनी यौवन-छटा दिखाने के लिए, केवल दूसरों के हृदय पर विजय पाने के लिए, वह यह खेल खेलती थी।" पति को यह चंचलता खलती है। सुमन जब पद्मसिंह की प्रशंसा करती है, तो गजाधर के हृदय पर गहरी चोट लगती है। ये ही छोटी-छोटी बातें प्रेम को नष्ट कर देती हैं।

त्रियाहठ संसार में प्रसिद्ध है। सुमन में भी यही दुर्गुण था। उसके आत्माभिमान ने हठ का रूप ग्रहण कर लिया। वह गजाधर से नम्रतापूर्वक बात नहीं करती थी। उसके कहने का उचित आदर भी वह नहीं करती थी। पद्मसिंह के यहाँ वह पति की इच्छा के विरुद्ध जाती थी, वहाँ से लौट कर आने पर पति के बुरा-भला कहने पर चुप नहीं रहती; उसका उत्तर देखिए—"अगर तुम्हें विश्वास नहीं आता, न आवे। जो गहने-गढ़ाते हो, मत गढ़ाना। रानी रूठेंगी अपना सुहाग लेंगी। जब देखो म्यान से तलवार बाहर रहती है, न जाने किसके बिरते पर।"

इस प्रकार का मुँहफट उत्तर देना और कठोर व्यवहार करना सुमन के स्वभाव का विशेष दुर्गुण है। प्रेम नष्ट न होता, तो और क्या होता। उसका यह स्वभाव ही उसका दुर्भाग्य था।

सुमन कर्त्तव्य-पालन में भी पटु न थी। "गृह-प्रबन्ध में कुशल न होने के कारण वह आवश्यक और अनावश्यक खर्च का

ज्ञान न रखती थी।..........उसने गृहिणी बनने की नहीं, इन्द्रियों के आनंदभोग की शिक्षा पायी थी।" पति की आर्थिक स्थिति पर उसने कभी विचार नहीं किया। वास्तव में अच्छाई-बुराई को समझने की उसमें शक्ति भी नहीं थी। उसका शारीरिक व्यक्तित्व चाहे जितना सुन्दर रहा हो, परन्तु उसमें आत्मिक व्यक्तित्व था ही नहीं। बुद्धि का नहीं, उसमें हृदय का प्राधान्य था। इस प्रकार के लोग अपनी समझ से काम न लेकर दूसरों का अनुकरण करते हैं। सुमन पर अपनी पास-पड़ोसिनों का प्रभाव पड़ने लगा, वह उन्हें प्रभावित न कर सकी। "सुमन अपनी पड़ोसिनों को जितनी शिक्षा देती थी, उससे अधिक उनसे ग्रहण करती थी।..........जिन महिलाओं के साथ सुमन उठती-बैठती थी, वे अपने पतियों को इन्द्रिय-सुख का मंत्र समझती थीं। सुमन ने भी यही शिक्षा प्राप्त की।" सुमन के हृदय में कर्तव्य-भावना उदय ही नहीं हुई। इन्द्रिय-सुख की लालसा ने उसमें असंतोष पैदा कर दिया। उसी ने उसकी गृहस्थी को राख कर दिया—"उसने अपने घर सीखा था कि मनुष्य को जीवन में सुख-भोग करना चाहिए। उसने कभी धर्मचर्चा न सुनी थी, न वह धर्म शिक्षा पायी थी, जो मन में संतोष का बीजारोपण करती है। उसका हृदय असंतोष से व्याकुल रहने लगा।"

पहले उसे अपनी परिस्थितियों से, फिर अपने पति से और अंत में अपने आदर्शों से असंतोष हुआ। बस, इसी ने उसे पतन के गढ़े में ढकेल दिया।

सुमन वास्तव में अल्हड़ पत्नी थी। उसे जिसने जो समझा दिया, वह मानने लगी। उसमें बुद्धि की इतनी कमी थी कि यह वेश्या-जीवन की चमक-दमक देखकर उसके भीतर की अवस्था की कल्पना न कर सकती थी। वेश्या का समाज में आदर नहीं होता, केवल उसके रूप का क्षणिक उपयोग मनोरंजन के रूप

में सभी करना चाहते हैं। इस पहलू पर ध्यान न देकर, वेश्या-जीवन को उसने आदर्श-जीवन मान लिया। उनकी इन सब भूलों का कारण यही था कि उसकी बुद्धि अभी परिपक्व नहीं हुई। इसका कुपरिणाम यह हुआ कि वह जिन परिस्थितियों में पड़ी, उनके अनुकूल वह अपने को न बना सकी। साथ ही वह आसानी से भोली बाई के जाल में फँस गयी और वेश्या बन गयी।

बुद्धि की सुमन में भारी कमी है, परन्तु उसकी अंतरात्मा बलवान है। हम जिस सामाजिक वातावरण में पलकर बड़े होते हैं, उसकी इतनी जबरदस्त छाप संस्कारों के रूप में, हम पर लग जाती है कि उनके प्रभाव से बचना कठिन होता है। सुमन एक भद्र परिवार की कन्या है, उसको यह सदैव याद रहता है। एक ओर वह भोली वेश्या से मेल-जोल बढ़ाती है, उसके सुखमय जीवन से ईर्ष्या करती है, परन्तु बीच-बीच में उसका अन्तःकरण उसे धिक्कारता है, उसकी धर्म-भावना जाग्रत हो उठती है, यदि परिस्थितियाँ इतनी जटिल न होतीं तो सुमन शायद बच भी जाती। यहाँ तक कि भोली बाई का आश्रय लेकर भी वह चाहती है कि सिलाई का काम करके अपना पेट भर ले। उसके घर वह पानी भी नहीं छूना चाहती। वेश्या बन कर भी वह नाच-गाने से पैसा पैदा करती है। सुमन उस जीवन से भी संतुष्ट न थी। देखिये—"सुमन को यद्यपि भोग-विलास के सभी सामान प्राप्त थे, लेकिन बहुधा उसे ऐसे मनुष्य की आवभगत करनी पड़ती थी जिनकी सूरत से उसे घृणा होती थी·······अभी उसके मन से उत्तम भावों का सर्वथा लोप नहीं हुआ था। वह उस अधोगति को नहीं पहुँची थी, जहाँ दुर्व्यसन हृदय के समस्त भावों को नष्ट कर देता है।··· ·······उसे ज्ञात होता था कि मैं किसी कुलटा के सामने भी सर उठाने के योग्य नहीं हूँ।" वह

बिट्ठलदास से कहती है—"मैं उस दशा में भी इस कुमार्ग से भागती रही। मैंने चाहा कि कपड़े सीकर अपना निर्वाह करूँ, पर दुष्टों ने मुझे ऐसा तंग किया कि अंत में मुझे इस कुएँ में कूदना पड़ा। यद्यपि इस काजल की कोठरी में आकर पवित्र रहना अत्यन्त कठिन है, पर मैंने प्रतिज्ञा करली है कि अपने सत्य की रक्षा करूँगी। नाचूँगी-गाऊँगी, पर अपने को भ्रष्ट न होने दूँगी।"

उसकी आत्मा अभी मृत न हुई थी। इसी से बिट्ठलदास के उद्बोधन ने उस पर गहरा असर डाला। उसने समझ लिया कि "सुख संतोष से प्राप्त होता है और आदर सेवा से।" वह ५०) मासिक गुजारे पर दालमंडी के जीवन को छोड़ देने के लिए फौरन तैयार हो जाती है।

सुमन का जीवन प्रारंभ से ही कठिनाइयों से भरा है। इसलिए उसमें कोमल भावों में मुख्य "प्रेम" का अभाव-सा दिखायी देता है; पर प्रेम के बिना नारी-जीवन अपूर्ण है। इन कठिन परिस्थितियों में भी उसके प्रेम का परिचय सदन के संसर्ग में हमें मिलता है। उसे वेश्या-जीवन से पूर्ण असंतोष था, उसके मन में एक प्रकार की घृणा उत्पन्न हो गयी थी; परन्तु जिस दिन से सदन ने उनके जीवन में प्रवेश किया, एक सरलता का उसे अनुभव होने लगा। सदन के प्रति उसे सच्चा आकर्षण था, यद्यपि इस प्रेम की विकलता का ध्यान उसे प्रति क्षण रहता था। दालमंडी को छोड़ते समय उसे सदन की ही याद थी। "सुमन इस समय सदन के प्रेम-जाल में फँसी हुई थी। प्रेम का आनन्द उसे कभी नहीं प्राप्त हुआ था, इस दुर्लभ-रत्न को पाकर वह उसे हाथ से नहीं जाने देना चाहती थी। यद्यपि वह जानती थी कि इस प्रेम का परिणाम वियोग के सिवा और कुछ

नहीं हो सकता, लेकिन उसका मन कहता था कि जब तक यह आनन्द मिलता है, तब तक उसे क्यों न भोगूँ ।"

सुमन का यह प्रेम स्वार्थरहित था। सदन उसे जब उपहार में साड़ी और कंगन चुराकर देता है, तो उसे दुख होता है। सदन की विपत्ति का अनुमान करके, वह बड़ी चालाकी से पद्मसिंह को कंगन वापस कर देती है। सुमन की इन विशेषताओं ने उसे वेश्या-समाज से बहुत ऊँचा उठा दिया है।

सुमन ने वेश्या-जीवन का परित्याग करके 'विधवाश्रम' की शरण ली। उसके जीवन में महान अंतर आ गया। सुमन के व्यक्तित्व की झाँकी देखिए :—"यह सुमन थी, पर कितनी बदली हुई। न लम्बे-लम्बे केश थे, न कोमल गात, न वह हँसते हुए गुलाब के-से होंठ, न वह चंचल ज्योति से चमकती हुई आँखें, न वह बनाव-सिंगार, न वह रत्नजटित आभूषणों की छटा, वह केवल सफेद साड़ी पहने हुई थी। उसकी चाल में गंभीरता और मुख से नैराश्य और वैराग्य-भाव झलकता था। काव्य वही था, पर अलंकारविहीन, इसीलिए सरस और मार्मिक।"

उसकी सारी उमंगें नष्ट हो चुकी थीं, अब हाथ लगा था केवल पश्चात्ताप। उसके मन में यही दुख उमड़ा करता था कि केवल मेरे कारण शांता का विवाह रुका और पिता जी की मृत्यु हुई। उस दुख को भुलाने के लिए "वह अपनी अन्य बहनों की सेवा में तत्पर रहती और धार्मिक पुस्तकें पढ़ती। देवोपासना, स्नानादि में उसके व्यथित हृदय को शांति मिलती।" फिर मन में इतनी उथल-पुथल होती थी कि कई बार आत्महत्या का संकल्प उसने कर डाला। स्वामी गजानन्द के उपदेशों से उसे शांति मिली और उसने शांता के लिए जीवन-धारण

करना उचित समझा। उसी के प्रयत्नों से सदन ने शांता को अपना लिया।

सुमन में सेवा, सहनशीलता, परिश्रम सभी गुण अन्त में देखने को मिलते हैं। सदन और शांता के मिलन के पश्चात् गृहस्थी का सारा काम वही करती है। जिस गृहस्थी को अपने पति के समय में न चला सकी, उसी का वह बड़े सुचारु रूप से प्रबन्ध करती है। धार्मिक चर्चा और अध्ययन भी साथ ही करती है। पास-पड़ोस की स्त्रियों के बच्चे की बीमारी में दवा-दारू का प्रबन्ध भी वह करती है। उसके इस परिश्रम का फिर भी कोई मूल्य नहीं। शांता या सदन किसी के मुँह से कृतज्ञता का एक भी शब्द नहीं निकलता। वे लोग उल्टे उससे पीछा छुड़ाना चाहते हैं। सुमन में आत्मसम्मान की भावना प्रधान थी। वह पति के घर सब कष्ट झेल कर भी रानी थी। विलास नगर में वह जब तक रही, उसी का सिक्का चलता रहा। आश्रम में वह सेवा-धर्म पालन करके सर्वमान्य बनी हुई थी।" सदन के घर उस मानिनी की यह हीनावस्था देखकर पाठक के हृदय में सहानुभूति उमड़ पड़ती है। सुमन की सहनशक्ति की पराकाष्ठा उस समय पहुँच जाती है, जब पास-पड़ोसी उससे आँखें चुराने लगते हैं। फिर भी "धार्मिक प्रेम, और कुछ अपनी अवस्था के वास्तविक ज्ञान ने उसे अत्यंत नम्र, विनीत बना दिया था।" वह शांता के प्रसवकाल तक केवल उन्हें सुख देने के लिए रुकी रहती है।

शांता के पुत्र होने पर, भामा और सुभद्रा की बातों से उसके हृदय पर चोट लगती है। वह सब प्रकार से शुद्ध और पवित्र है; परन्तु उसकी एक बार की भूल को समाज क्षमा नहीं करता, वह खोया हुआ सम्मान नहीं वापस पाती। उसके हृदय में असह्य पीड़ा होती है। वह सदन का घर छोड़कर निकल पड़ती

है और अंत में स्वामी गजानन्द 'सेवासदन' का भार सौंप देते हैं। इस प्रकार संसार-सागर की निष्ठुर लहरों में उलझी हुई सुमन को किनारा मिलता है।

सुमन के चरित्र द्वारा पाठक के सामने कई समस्याएँ लेखक प्रस्तुत करता है। उसमें हमें मिलता है नारी-स्वभाव का विश्लेषण, समाज में स्त्री का स्थान और वेश्या समस्या का निराकरण।

शांता

कहते हैं एक वृक्ष के दो फलों का स्वाद एक-सा नहीं होता है। शांता और सुमन एक ही माता के गर्भ से उत्पन्न दो बहनें हैं, पर उनके स्वभाव में आकाश-पाताल का अन्तर है। यह अन्तर बचपन ही से प्रकट हो जाता है—"बड़ी लड़की सुमन सुन्दर, चंचल और अभिमानिनी थी। छोटी लड़की शांता भोली, सुशीला थी। सुमन दूसरों से बढ़कर रहना चाहती थी।............ शांता को जो कुछ मिल जाता था, उसी में प्रसन्न रहती।"

उसका भावी-जीवन उसके बाल-स्वभाव के अनुरूप विकसित होता है। शांता के जीवन में हम भारतीय नगरी का चित्र देखते हैं। भारतीय-स्त्रियों के लिए 'पति' ही जीवन है और पातिव्रत उनका धर्म है। एक बार जिसे पतिरूप में वे वरण कर लेती हैं, उनको वे आजीवन अपना आराध्य समझती हैं। उनकी सारी शक्ति का आधार पति-प्रेम होता है और उसी के बल पर कितनी ही कठिनाइयाँ वे सहन करती हैं। शांता का विवाह सदन से तय हुआ था। बस, इसी बात से वह सदन को अपना पति मान लेती है। "उसके जीवन में प्रेम का उद्भव हो गया था। सदन उसे न मिला, पर सदन से कहीं उत्तम वस्तु मिल गयी। यह सदन का प्रेम था।" शांता में प्रेम का आध्यात्मिक रूप हमें देखने को मिलता है। उसने शांता में कितना परिवर्तन कर

दिया। "उसकी आँखें निर्मल आत्मिक ज्योति से चमक रही थीं। शोक और मालिन्य का आभास तक न था। जब से उसने सदन को देखा था, उसे अपने हृदय में एक स्वर्गीय विकास का अनुभव होता था। उसमें एक अद्भुत आत्मबल का उदय हो गया था।"

आध्यात्मिक प्रेम सारे मनोविकारों का समूह नष्ट कर देता है। ईर्ष्या-द्वेष के स्थान पर सहानुभूति और सेवा, क्रोध के स्थान पर सहानुभूति और सेवा, क्रोध के स्थान पर सहनशीलता जैसे गुण उत्पन्न हो जाते हैं। शांता को अपनी मामी, बहनों आदि पर अब मोह उत्पन्न हो गया। परिश्रम में उसकी रुचि बढ़ गयी। जब उसके पिता कृष्णचन्द्र चलते समय उसे संतोष रखने का उपदेश देते हैं, तो वह केवल यह सोचती है—"जिसे पातिव्रत जैसा साधन मिल गया है, उसे और किसी साधन की क्या आवश्यकता? इसमें सुख, संतोष और शांति सब कुछ है।" मामा के घर पर उसे अनेक कष्ट सहने पड़ते हैं, परन्तु वह सब कुछ सहन करती है। पद्मसिंह उसे ले जाकर विधवा-आश्रम में रख देते हैं, सदन उसे अपनाता नहीं, परन्तु वह सारे कष्ट एक पतिप्रेम को लेकर हँसते-हँसते झेलती रहती है।

शांता के मामा उमानाथ उसका दूसरा विवाह करने के प्रयत्न में हैं। यह लोभ उसके पातिव्रत-धर्म की एक कसौटी थी, किन्तु उसका धर्म खरा निकलता है। "संसार चाहे जो कुछ समझता हो, वह अपने को विवाहिता ही समझती थी। एक विवाहिता कन्या का दूसरे घर में विवाह हो, यह उसे अत्यन्त लज्जानक, असह्य प्रतीत होता था।........विवाह, भाँवर या सेंदुर नहीं, बंधन केवल मन का भाव है।" उसका सदन पर सच्चा अनुराग हो गया था। और "जाकर जापर सत्य सनेहू, तो तेहि मिलै न

कछु संदेहू।" अन्त में अपने प्रेम के बल पर वह सदन को प्राप्त कर लेती है और उसके सास-ससुर सभी उसे अपना लेते हैं।

प्रेम के अभाव में सुमन की गृहस्थी नरक बन गयी, परन्तु शांता के प्रेम ने उसके विवाहित-जीवन को स्वर्ग बना दिया। सदन को आत्मनिर्भर और सम्पन्न बनाने में शांता का प्रेम ही प्रधान है। अँग्रेजी भाषा के कवि मिडेल्टन ने एक स्थल पर लिखा है—

"The treasure of the deep are not so precious as are the concreated comforts of a man locked up in womon's love. I scent the air of blessings, when I come our near the house what a delicious breath marriage sends forth the violet bed's not sweeter."

अर्थात समुद्र के रत्नों का उतना मूल्य कहाँ जितना एक स्त्री के प्रेम में बद्ध एक पुरुष का सुख। जब मैं घर से निकल आता हूँ तो एक सुखद वायु का अनुभव करता हूँ। पुरुष-शय्या भी उतनी सुवासित न होगी जितनी विवाह की सुगंधि मधुर होती है।

सदन भाग्यशाली था जो शांता का प्रेम-रस पान करता था।

शांता के स्वभाव में यदि कोई आपत्तिजनक बात थी, तो उसका सुमन के प्रति अविश्वास। वही सुमन, जो शांता की अपार सेवा करती है, शांता की आँखों में खटकती है। फिर सुमन तो स्वयं चोट खाई हुई घायल और दुखी थी। दुर्दिन में शांता का सहारा उसने लिया था। पाठक कल्पना कर सकता है सुमन के मनोभावों की, जब शांता उसके प्रति यह भाव व्यक्त करती है—"नहीं, अभी तक मैं ही बनाती रही हूँ, अब वे अपने हाथ से बना लेते हैं।" दुनियाँ सुमन को पतिता समझती थी

परन्तु जब शांता की नजरों में सुमन इतनी गिरी हुई है, तो सुमन की मनोव्यथा की सीमा न रही। सच है, सुख में लोग अपने ही प्रेमियों को भूल जाते हैं :—

होता भला है कौन बुरे वक्त का शरीक
पत्ते भी भागते हैं खिजां में शहर से दूर।

शांता के इस व्यवहार से उसके चरित्र की शोभा घट जाती है। वास्तव में स्त्रियों में सामाजिक रूढ़ियों के प्रति अधिक अन्ध श्रद्धा होती है। शांता अब गृहिणी बन गयी थी। समाज में मान-सम्मान की अधिकारिणी बनने के बाद, समाज की प्रथाओं पर उसका मोह आ जाना स्वाभाविक था। शांता में इतनी बुद्धि न थी कि वह इन विचारों से मुक्त हो सकती।

सुभद्रा

भारतीय परिवार अपनी उच्चकोटि की प्रेम-भावना, सहानुभूति, सहकारिता और कर्तव्य-पालन आदि गुणों के लिए प्रसिद्ध है। परिवार की ख्याति का सारा श्रेय भारतीय नारी को है, इस कथन में तनिक भी अत्युक्ति नहीं। भारतीय पत्नी में सादगी, सेवा, त्याग और मितव्ययिता जैसे गुण होते हैं। समय-समय पर पत्नी को अपने जीवन में अनेक रूप धारण करने पड़ते हैं। कभी वह घर की रानी के रूप में शासन करती है, कभी मातृरूप में वात्सल्य की पावन धारायें प्रवाहित करती है, तो कभी दुर्दिन में अपने पति को सच्चे मित्र की भाँति सँभालती है। यहाँ तक कि पति-पत्नी के क्षणिक झगड़े, मनमुटाव और मेल सभी में एक विचित्र मिठास होती है। भारतीय परिवार का यह सौन्दर्य स्त्री पर ही निर्भर है। "सेवासदन" की सुभद्रा में प्रेमचन्द जी ने यही चित्र अंकित किया है।

सुभद्रा पं० पद्मसिंह की पत्नी है। वह अपने पति को

प्राणों के समान प्यारी है। सुभद्रा के प्रेम में सेवा का भाव प्रधान है, इसलिए पति के हृदय पर उसका अधिकार है। इसके अतिरिक्त उसमें अन्य गुण भी हैं :—"सुभद्रा यद्यपि बहुत रूपवती न थी और उसके वस्त्राभूषण भी साधारण ही थे, पर उसका स्वभाव ऐसा नम्र, व्यवहार ऐसा सरल तथा विनयपूर्ण था कि सुमन का हृदय पुलकित हो गया।"

भारतीय परिवार में स्त्रियों की सहानुभूति और सेवा यदि प्रसिद्ध है, तो उसमें विचारों की संकीर्णता, एक अवगुण भी है। पद्मसिंह अपने बड़े भाई मदनसिंह के इतने कृतज्ञ हैं कि अपने भतीजे सदन के लिए बड़े से बड़ा खर्च उठाने को तैयार रहते हैं। किंतु सुभद्रा को यह सब बुरा लगता है। जब पतिदेव घर के खर्च में कमी करने की सलाह देते हैं तो सुभद्रा व्यंग्योक्तियों की बौछार कर देती है। अन्य स्थल पर वह सदन के मामले में उबल पड़ती है। सदन उसकी आँखों में खटकता था।

सदन के लिए घोड़ा खरीदने के प्रस्ताव पर सुभद्रा फिर व्यंग्य से काम लेती है। वह यह सोचती है—"आज घोड़े की जिद्द की है, कल मोटरकार की धुन होगी, तब क्या कीजिएगा? माना, दादा जी ने आपके साथ बड़े अच्छे सलूक किये हैं, लेकिन सब काम अपनी हैसियत देखकर ही किए जाते हैं।"

सदन के प्रति सुभद्रा इस प्रकार के संकीर्ण विचार अवश्य रखती है, परन्तु मितव्ययिता के दृष्टिकोण से ऐसे विचार अनुचित भी नहीं कहे जा सकते। पद्मसिंह ने सदन के लिए जो-कुछ खर्च उठाया, वह उनकी आर्थिक स्थिति के विचार से अनुचित ही है। सुभद्रा चतुर गृहणी के रूप में हमारे सामने आती है। वह धन-संचय करने की कला अच्छी तरह जानती है। शर्मा जी को पता भी नहीं, पर सुभद्रा ५००) जमा कर लेती है धन-संचय का उद्देश्य भी अच्छा था :—"कभी सोचती अबकी

घर चलूँगी तो भाभी के लिए कंगन ले चलूँगी.........कभी सोचती, यहीं कोई काम पड़ जाय और शर्मा जी रुपये के लिए परेशान हों तो मैं चट निकाल कर दे दूँगी। वह कैसे प्रसन्न होंगे! चकित हो जायँगे।" साधारणतः युवतियों के हृदय में ऐसे उदार भाव नहीं उठ सकते। वे रुपये जमा करती हैं अपने गहनों के लिए। लेकिन सुभद्रा बड़े घर की बेटी थी, गहनों से मन भरा हुआ था..........उसे रुपयों का जरा भी लोभ न था।

सुभद्रा में विवेक और दूरदर्शिता है। स्वयं पद्मसिंह इसके कायल हैं। वे कहते हैं—"यद्यपि मैंने बहुत विद्या पढ़ी है, पर इसके हृदय की उदारता को मैं नहीं पहुँचता। यह अशिक्षिता होकर भी मुझसे कहीं उच्च-विचार रखती है।" वह जब ५००) शर्मा जी को दे देती है, तो वे लोभ में, घोड़ा लौटा देना चाहते हैं; परन्तु सुभद्रा कहती है कि साहब को दिया हुआ वचन तोड़ना अनुचित है। इसी प्रकार जब पद्मसिंह की आलोचना प्रभाकरराव पत्रों में करते हैं और वे उसका उत्तर देना चाहते हैं, तो सुभद्रा मौन रखने की ही सलाह देती है।

सुभद्रा उदार विचारों वाली स्त्री है। सुमन से सारा समाज घृणा करता है, परन्तु वह सुमन को नीची दृष्टि से नहीं देखती। सुमन को स्वयं एक बार वह आश्रय भी दे चुकी थी। इसी तरह वह सदन को शांता को अपना लेने की सलाह देती है। वह स्पष्ट कहती है—"माँ-बाप के डर से कोई अपनी ब्याहता को छोड़ थोड़े ही देता है। दुनियाँ हँसेगी, तो हँसा करे। उसके डर से अपने घर के प्राणी की जान ले ले?

सुभद्रा में एक विशेष गुण है, हठ का न होना। यह विनम्रता और सुलह-पसंद स्वभाव ही उसे घर की रानी बना देता है। यहाँ उसके और सुमन के चरित्र में कितना अंतर है! सुभद्रा पति से लड़ पड़ती है, व्यंग्य करती है, मान करती है; परन्तु

पद्मसिंह के क्रोध को सहन कर लेती है। किसी न किसी वहाने से वह पति को मना लेती है। उसके पुत्र नहीं था, पद्मसिंह इससे कुछ विरक्त हो चले थे; परन्तु सुभद्रा के गुणों ने उन्हें मोहित कर रक्खा था। सुभद्रा एक सफल पत्नी थी और उसका सुखमय गार्हस्थ्य-जीवन उसकी सफलता का प्रमाण है।

—:(❀):—

समीक्षा

सेवासदन में समाज के उस शैतान का चित्र खींचा गया है जो हमारे शहरों में खास-खास बाजारों के छज्जों को सुशोभित किये है। लेखक ने इस कठिन कार्य को बड़ी चतुराई के साथ पूरा किया है। जहाँ-तहाँ भाषा तथा भाव में दोष दिखाये जा सकते हैं। कहानी भी एक-आध जगह जरा असंबद्ध-सी जँचेगी। लेखक के चरित्र-चित्रण से भी, कहीं पर पाठक सहमत न होंगे। परन्तु, यह कहीं नहीं होने पाया है कि दालमंडी की गंदी वायु में घूमते हुए भी आपके विचार कलुषित हो जायँ। पाठक के भाव या तो पद्मसिंह से मिलेंगे या बिट्ठलदास से। सदन या भोली से सहानुभूति रखकर उनके मन में लालसा के भाव उत्पन्न न होंगे!

वार-वनिताओं का आदर होने से गृहस्थाश्रम का अधःपतन होता है। 'सेवासदन' में कही गयी कहानी के द्वारा उसके उद्धार की रीति बतायी गयी है। इस उपन्यास का प्रधान उद्देश्य यही है। परन्तु इसके प्रत्येक पात्र के चरित्र से एक न एक शिक्षा

मिलती है। कृष्णचन्द्र सच्चे हैं; परन्तु उन्हें अपने सत्य को देश की दहेज-प्रथा-रूपिणी भीषण दुर्देवी के चरणों में बलिदान करना पड़ता है। अपनी दुलारी और शिक्षिता लड़की के विवाह के लिए दहेज की रकम जुटाने को वे रिश्वत लेते हैं, पकड़े जाते हैं, कैद भुगतते हैं। घर मटियामेट हो जाता है। एक लड़की निर्धन वर के गले मढ़ी जाती है; दूसरी दासी होकर अपना समय काटती है; स्त्री मानसिक क्लेश का शिकार बनकर बहुत शीघ्र संसार से कूच कर जाती है। इस अग्नि-परीक्षा में हरिश्चंद्र ही का सत्य टिक सकता था। जेल से लौटने पर कृष्णचंद्र के चरित्र का अच्छी तरह पतन हो गया है। लेखक महोदय बहुत देर तक उनको हमारे सामने नहीं रहने देते। विपत्ति-सागर में दो-चार और गोते लगा वे हमारी दृष्टि से लुप्त हो जाते हैं।

कृष्णचंद्र का-सा शोकमय अंत और किसी का नहीं। बाकी चरित्रों के पाठ में कहीं आनंद है, कहीं शोक और कहीं विप्लव; परन्तु अन्त शांतिपूर्ण है। इन चरित्रों में सबसे अधिक ध्यान देने योग्य चरित्र सुमन का है।

अत्युक्ति न समझिए, सुमन ही के चरित्र-चित्रण में उपन्यास का गौरव है। उसी में उपन्यास के प्राण हैं। सुमन के चरित्र में यदि कहीं भी बट्टा लग जाता, तो उपन्यास किसी काम का न रहता। लेखक महाशय उसे पढ़ा-लिखाकर, और शारीरिक सुख का शौकीन बनाकर पंद्रह रुपए महीने पर नौकर एक अधेड़ ब्राह्मण के साथ ब्याह देते हैं। चरित्र-चित्रण में सुमन को एक इसी बात ने बचा लिया है कि वह भारतीय नारी है। वह पतिव्रता है सही; परन्तु आत्म-गौरव और शारीरिक सुख की लालसा उसको वह व्रत निभाने नहीं देती। इधर वह देखती है कि समाज में पातिव्रत की कोई कदर नहीं। घर के सामने ही वह देखती है कि पतिता भोली का आदर सम्मान बड़े-बड़े

धर्मज्ञ करते हैं; पर उसके लिए इतना भी नहीं कि वह अपनी मर्यादा को एक नीच सिपाही के हाथ से भी बचा सके! पति महाशय (गजाधरजी) क्या करें? पत्नी के वस्त्राभूषण और मान-प्राप्ति की लालसा को वे कुछ और ही समझे। एक दिन आग लग ही तो गयी। सुमन गृहिणी के उच्च पद से गिर गयी।

परन्तु अभी कुछ और पतन होना बाकी है। दूसरे दृश्य में उसे हम दालमंडी के एक कमरे में देखते हैं। यदि लेखक महाशय जरा भी चूक जाते तो सुमन के पतन की पराकाष्ठा हो जाती। सदनसिंह के प्रेम-पाश में सुमन बँध जाती है; परन्तु पतित नहीं होने पाती। इसके पहले ही समाज-सुधारक विट्ठलदास उसके उद्धार के लिए पहुँच जाते हैं; पर उसका उद्धार नहीं होता। विधवा-आश्रम में उसका बहुत शीघ्र लाया जाना, समाज की कृपा से उसके उद्धार-विरुद्ध कठिनाइयों का पड़ना, शांता की विपत्ति, उसके भावी श्वसुर मदनसिंह का विरोध—इनमें से किसी एक का भी काम कर जाना सुमन को गिरा देने के लिए काफी था। परन्तु लेखक उसको हर तरफ से बचाकर अन्त में सेवासदन की संचालिका का पद तक दे देते हैं। सुमन ने अपने ही को नहीं, उपन्यास को भी गिर जाने से बचा लिया।

स्त्री-पात्रों में यदि प्रधान चरित्र सुमन का है, तो पुरुष-पात्रों में पद्मसिंह का मानने योग्य है। कथा-प्रसंग में वे कुछ देर बाद दिखायी देते हैं; परन्तु वे सामने से नहीं हटते। पद्मसिंह साधारण समाज-सुधारक हैं। विचारों के बहुत ऊँचे हैं, हृदय के कोमल हैं, परन्तु हैं बड़े दब्बू। ऐसे पुरुष लेख चाहे जितने लिख मारें, वक्तृताएँ चाहे जितनी झाड़ आयें; परन्तु मौका पड़ने पर रहेंगे सबके पीछे। नाच के बड़े विरोधी हैं; परन्तु मित्रों ने दबाया तो जलसा कर बैठे। इसका उन्हें बहुत-कुछ प्रायश्चित भी करना पड़ा—न यह नाच होता और न सुमन घर से निकाली

जाती। वे बिट्ठलदास की शरण लेते हैं; परन्तु उनसे पद्मसिंह की नहीं बनती। जैसे वे कर्म में सच्चे हैं; वैसे ही बिट्ठलदास विचार में कच्चे हैं। चन्दा वसूल करने में कठिनाई; वारांगनाओं को शहर के बाहर जगह देने के प्रस्ताव का म्युनिसिपैलिटी के मेंबरों-द्वारा विरोध; इधर घर में सदनसिंह की ज्यादती, उधर सुमन की छोटी बहन शांता के साथ सदनसिंह के विवाह में विघ्न पड़ने की चोट—पद्मसिंह बिलकुल ढीले पड़ गये। परन्तु विचारशक्ति में कमी नहीं पड़ी। उन्हीं के द्वारा लेखक महाशय ने अपना विचार प्रकट किया है कि वारनारियों को निकाल देने ही से सुधार न हो जायगा; क्यों न उनको और उनकी संतानों को अच्छे मार्ग पर लाने का प्रयत्न किया जाय? इस विचार को बिट्ठलदास सेवासदन के रूप में परिणत करते हैं। परन्तु पद्मसिंह के हृदय में अन्त तक भय की सत्ता बनी रहती है। झेंप के मारे वे सेवासदन में नहीं जाते; कहीं ऐसा न हो, जो सुमन से चार आँखें हो जायँ।

और भी अनेक पात्र हैं। सरला शांता को अनेक कष्ट सहन करके भी, अन्त में सौभाग्यवती गृहिणी का सुख भोगना बदा था। चंचला, परन्तु पतिव्रता सुभद्रा, आपदायें झेलकर भी, पति के सामने हँसती ही रहती है। गृहस्थ गजाधर के संन्यासाश्रमी अवतार गजानंद, अन्त में बहन के घर से निकाली हुई, किसी समय की अपनी पत्नी को शोकसागर से उबारकर शांति-प्रदान करते हैं। पुराने विचार के देहाती रईस मदनसिंह नाच कराने में अपनी मर्यादा समझते हैं। दुलार से बिगड़े हुए नवयुवक सदनसिंह का पतन, और अपनी मेहनत द्वारा उद्धार; म्युनिसिपैलिटी के मेंबरों में से कोई गान-विद्या और हिंदी के शौकीन हैं; तो किसी को अंग्रेजी बोले बिना चैन नहीं, किसी के दुर्व्यसन वैसे ही हैं जैसे उनके दुर्विचार—इन सब के लिए इस उपन्यास

में जगह है, सबके चित्र देखने को मिलते हैं, सबसे किसी न किसी प्रकार की शिक्षा ग्रहण करने का अवसर प्राप्त होता है।

उपन्यासकार की हिन्दी-सेवा

परिचय—बाबू प्रेमचन्द जी का असली नाम धनपतराय था। अपका जन्म सन् १८८० में एक प्रतिष्ठित कायस्थ-कुल में हुआ था। आरंभ में इन्होंने उर्दू-फारसी की शिक्षा पायी। सन् १८६६ के लगभग मैट्रीकुलेशन पास किया और ये एक स्कूल में अध्यापक हो गये। उस समय इनकी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी और लगभग २०) मासिक ही इन्हें मिलते थे, परन्तु इन्होंने किसी प्रकार बी० ए० पास कर लिया। इसके कुछ समय बाद राष्ट्रीय-आंदोलन से प्रभावित होकर इन्होंने नौकरी छोड़ दी।

हिंदी के क्षेत्र में—उर्दू में सन् १६०१ के लगभग ही इन्होंने कहानियाँ लिखना शुरू कर दिया था। ५-६ वर्ष बाद ये उपन्यास भी लिखने लगे। अपने समय के ये उर्दू के लब्ध-प्रतिष्ठ लेखक थे और आपकी कहानियाँ उर्दू के सर्वश्रेष्ठ मासिक पत्र 'जमाना' में आदर से स्थान पाती थीं। सन् १६१० के आसपास से ये अपनी उर्दू कहानियों और उपन्यासों का रूपांतर हिंदी में करने-कराने लगे। यों इन्होंने हिंदी-साहित्य-क्षेत्र में पदार्पण किया। लगभग २५ वर्ष तक हिंदी में कहानियाँ और उपन्यास लिखकर इन्होंने अक्षय कीर्ति प्राप्त की। 'मर्यादा' और 'माधुरी' का सम्पादन भी इन्होंने कुछ समय तक किया। तत्पश्चात्, सरस्वती प्रेस, बनारस की स्थापना करके 'हंस' (मासिक) और 'जागरण' (साप्ताहिक) का संचालन-सम्पादन किया। सिनेमा में भी ये कुछ दिन काम करने गये थे।

हिंदी-सेवा

कलापूर्ण मौलिक कहानियाँ—प्रेमचंदजी ने लगभग ३००

कहानियाँ लिखीं। उपन्यासों से अधिक इनकी कहानियों का प्रचार है और उनमें उपन्यासों से अधिक मार्मिकता भी है जो हृदय की चुटकी लेती हैं। संपूर्ण जीवन की समस्त परिस्थितियों की मार्मिक विवेचना इनकी कहानियों में मिलती है और जिन कहानियों में हर्ष-शोक, सुख-दुख, ममता-कर्तव्य आदि विपरीत भावों भावों का द्वंद्व है, वे उच्चकोटि की हैं।

श्रेष्ठ मौलिक उपन्यास—उपन्यास के क्षेत्र में भी इन्होंने मौलिक और आदर्श कार्य किया। हिंदी के, वास्तव में, यही सर्वप्रथम साहित्यिक उपन्यास-लेखक हैं। मौलिकता की दृष्टि से भी इनका बड़ा महत्व है। इनके उपन्यास हमारे साहित्य की स्थायी सम्पत्ति हैं। सबसे महत्वपूर्ण कार्य इस प्रसंग में, उनका यह है कि तत्कालीन उपन्यासों और कहानियों के क्षेत्र में उन्होंने युगांतर उपस्थित किया। उनके पहले हिंदी में जो उपन्यास लिखे गए थे, उनका प्रचार बहुत हुआ था। तथापि उनमें जनता की रुचि उन्नत बनाने अथवा उसमें संस्कार करने की क्षमता नहीं थी। यह कार्य प्रेमचन्द जी की कृतियों ने किया। कथा-कहानियों को सुन्दर रूप साहित्यिक देकर जनता की रुचि को इन्होंने उन्नत और परिष्कृत किया।

अतः प्रेमचन्द ही हिन्दी के प्रथम कहानी और उपन्यास लेखक हैं, जिनकी साहित्यिक और मौलिक कृतियों का उर्दू, मराठी, गुजराती, जापानी, बँगला, अँग्रेजी आदि भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। अब तक हमने इन भाषाओं की कहानियों और उपन्यासों का हिन्दी में अनुवाद करके अपना मनोरंजन किया था। कह सकते हैं कि प्रेमचन्द जी ने इस ऋण को अदा करने की ओर पहला कदम बढ़ाया था।

मणि-कांचन-संयोग—प्रेमचन्द जी के प्रायः सभी उपन्यासों,

और अधिकांश कहानियों में, पाठकों के लिए कुछ न कुछ उपदेशात्मक संदेश अवश्य है और सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा नैतिक, प्रायः सभी कुरीतियों की उन्होंने आलोचना भी की है। इसके लिए उन्होंने ऐसे मीठे ढंग को अपनाया कि उससे पाठकों का मनोरंजन तो होता ही है, किसी प्रकार की कटुता का अनुभव नहीं होता। इस प्रकार उनकी रचनाओं में 'शिवं-सुन्दरं' का मणि-कांचन-संयोग देखने में आता है।

मनोवैज्ञानिक चित्र—दूसरी बात इनकी कृतियों के सम्बन्ध में यह भी कही जा सकती है कि वे 'मनुष्य जीवन की साधारण से साधारण घटना को लेकर उसका निष्कर्ष निकालते समय मनुष्य-हृदय के गूढ़ातिगूढ़ रहस्यों को मनोविज्ञान के नियमों के ढंग पर ऐसा सजाकर धर देते हैं कि देखते ही बनता है।' दूसरे शब्दों में, 'मनुष्य-जीवन की सूक्ष्मातिसूक्ष्म का मनोवैज्ञानिक चित्र' इन्होंने खींचा है।

चरित्र-चित्रण की स्वतन्त्रता—चरित्र-चित्रण की दृष्टि से भी हिन्दी के लेखकों में इनका विशेष स्थान है। इनके सब पात्र स्वच्छन्द जीवित नर-नारी हैं। जान पड़ता है कि सबको इन्होंने बोलने-चालने-फिरने की पूर्ण स्वतन्त्रता दे दी है और जो वे कहते हैं उसी का चित्र ये खींचते जाते हैं।

यथार्थ और आदर्श का समन्वय—उनकी रचनाओं की एक और विशेषता है। इन्होंने न तो उग्र जी की तरह यथार्थ के नाम पर सामाजिक नग्नचित्र खींचे हैं और न आदर्श के पीछे पड़कर वे उपदेशक ही बन गये हैं। एक निपुण चित्रकार की तरह उन्होंने यथार्थ का उतना ही चित्रण किया है, जितना विषय को स्पष्ट करने के लिए आवश्यक है और कुशल कलाकार की तरह आदर्श की ओर उतना ही संकेत किया है, जितना सहृदय समाज के लिए उपयोगी है।

जनता के साहित्यकार—अन्तिम बात यह है कि प्रेमचन्द जी जनता के साहित्यकार हैं। उनके प्रधान उपन्यासों और अधिकांश कहानियों का विषय उन दीन-हीन, निर्धन, निरीह कृषकों की ग्राम-समस्या है जिसका सम्बन्ध समाज और राजनीति, दोनों से ही है। उन्होंने पूँजीपतियों का गुणगान न करके इन दीन-दुखियों को अपनाया है। इसमें हमें उनकी विशालहृदयता का पता लगता है। जिस दिन हमारे किसान शिक्षित होंगे, उसी दिन प्रेमचन्द जी का वास्तविक मूल्य उन्हें मालूम होगा, तभी वास्तव में उनका सम्मान होगा, क्योंकि उन्हें प्रेमचन्द जी की कृतियों में वह चीज मिलेगी जो हिन्दू-समाज को तुलसीकृत रामायण में मिलती है।

स्वागत-सम्मान—प्रेमचन्द की रचनाओं का सारे भारत में प्रचार हुआ; जनता ने उसका आदर से स्वागत किया। हमारे साहित्यिक भी उनका हृदय से सम्मान करते हैं। हिन्दी की प्रमुख साहित्यिक संस्थाओं ने उन्हें अपना सभापति तो नहीं बनाया और न उनकी रचनाओं को पुरस्कृत ही किया, फिर भी सभी हिन्दी-भाषियों के हृदय में प्रेमचन्द जी ने घर कर लिया है और प्रतिदिन उनकी रचनाओं का प्रचार बढ़ता जाता है। उनके 'कर्मभूमि' नामक उपन्यास पर हिन्दुस्तानी एकेडमी से ५००) का पुरस्कार मिला था। उनके मुख्य ग्रन्थ ये हैं—

प्रसिद्ध उपन्यास—'सेवासदन', 'प्रेमाश्रम', 'रंगभूमि', 'कायाकल्प', 'निर्मला', 'वरदान', 'गबन', 'कर्मभूमि', 'गोदान।'

कहानी-संग्रह—'प्रेम-द्वादशी', 'प्रेम-पूर्णिमा', 'प्रेम-पचीसी', 'प्रेम-प्रसून', नवनिधि, 'सप्तसरोज', 'मानसरोवर' (आठ भाग)।

नाटक—'कर्बला', 'संग्राम', 'प्रेम की वेदी।'

निबन्ध-संग्रह—'कुछ विचार'।

प्रेमचन्द के विषय के सम्बन्ध में अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है। कारण, उन्होंने केवल कहानियाँ और उपन्यास ही अधिक लिखे हैं। 'मर्यादा', 'माधुरी', 'हंस, और 'जागरण' के सम्पादक होकर उन्होंने जो सम्पादकीय नोट और निवन्ध लिखे थे, उनका विषय प्रायः गम्भीर है। उनके उपन्यासों और कहानियों में भी अनेक गम्भीर स्थल हैं। अतः शैली में विशेष अन्तर नहीं है।

